

Published by  
The Hony. Secy.  
N P Sabha,  
Kashi.



Printed by  
A Bose,  
at The Indian Press, Ltd.  
Benares-Branch

## भूमिका

महाकवि श्री बाँकीदासजी के प्राप्त ग्रंथों में से सात ग्रंथ तो प्रथम भाग में और दस ग्रंथ दूसरे भाग में प्रकाशित हुए हैं। अब इस तीसरे भाग में नौ ग्रंथ और एक संग्रह यो १० प्रकाशित होते हैं जिनके नाम ये हैं :

- |               |                    |
|---------------|--------------------|
| १ जेहलजसजड़ाव | ६ सिद्धराव छतीसी   |
| २ काथर बावनी  | ७ वचनविवेक पञ्चीसी |
| ३ भूमाल नखशिख | ८ कृपण पञ्चीसी     |
| ४ सुजस छतीसी  | ९ हमरोट छतीसी      |
| ५ संतोष बावनी | १० स्फुट संग्रह    |

“स्फुटसंग्रह” में नीचे लिखे गीत, छंद और खंड-ग्रंथांश हैं: गीत २५, छंद ६, रस अलंकार के ग्रंथ का खंडित अंश, वृत्तरत्नाकर भाषा का खंडित अंश, काव्य के गुणदोष का निर्णय ( खंडित अंश ) और दोहे ३।

२५ गीतों में कुछ तो कविया मुरारिदानजी व हिंगलाज-दानजी के संग्रह में से हैं, शेष जोधपुर के कविराजा मेहर-दानजी की दोनों पुस्तकों वा अन्यत्र से प्राप्त हैं। खंडित अंश भी उक्त कविराजजी के ग्रंथों से निकाले गए हैं। गीतों में से १५ गीतों पर कविया मुरारिदानजी ने टीका की है। पाँच गीत मूल गीतों के साथ नहीं लिखे गए, टीका ही के

साथ लिखे गए । २० गीत मूलरूप विना टीका के भी और दस टीका के साथ भी लिखे गए हैं । दोहा एक टीका सहित दिया गया है । खडित ग्रंथार्थों का टीका, उनके अपूर्ण होने के कारण, हो नहीं सकती थी । जब कभी संपूर्ण ग्रंथ मिलेंगे तभी टीका आदि का उद्योग हो सकेगा ।

तीसरे भाग के उक्त १० ग्रंथ कहीं से प्राप्त हुए, उसे ही दिखलाते हैं-

( १ ) जेहलजस जड़ाव कविराजा मेहरदानजी (वाँकी-दासजी के प्रपौत्र ) की हस्त-लिखित पुस्तक से ।

( २ ) काथर वावनी स्व० क० रा० श्री मुरारिदानजी कश्मीरवालों से ।

( ३ ) भुमालनखशिख एक प्रति उक्त मुरारिदानजी कश्मीरवालों से । दूसरी प्रति म० म० रा० व० ओम्ना गौरीशंकरजी से । तीसरी स्व० लाला श्रीनारायणजी जयपुरवालों से ।

( ४ ) सुजस छतीसी उक्त श्री ओम्नाजी से ।

( ५ ) संतोष वावनी " " " " ।

( ६ ) सिद्धराव छतीसी " " " " ।

( ७ ) वचन विवेक पञ्चोसी यह "मार्तंड" में छपी थी जो हमें मिली नहीं, परंतु एक प्रति कविया मुरारिदानजी जयपुरवालों से वा० महतावचंदजी को मिली ।

( ८ ) कृष्ण पञ्चीसी उक्त कविया मुरारिदानजी से । यह कृष्णदर्पण से बहुत अंशों में भिन्न है । द्वितीय भाग के प्रकाशन तक यह नहीं मिली थी ।

( ९ ) हमरोट छत्तीसी जोधपुर-निवासी बारैठ श्री सीतारामजी लालस ने नकल भेजी । यह इन सब ग्रंथों के पीछे मिली । नकल ता० १७ सितंबर सन् १९३२ को आई थी ।

( १० ) स्फुट संग्रह इसकी प्राप्ति ऊपर लिखी जा चुकी है\* ।

कहते हैं कि बाँकीदासजी ने कोई दो हजार गीत रचे थे । और उक्त तीनों भागों के ( ७ + १० + ९ = २६ ) ग्रंथों के अतिरिक्त और भी कई ग्रंथ रचे थे जो चारणों और अन्य विद्वान् पुरुषों के यहाँ उद्योग से मिल सकते हैं । जिन ग्रंथों का होना ज्ञात हुआ है, परंतु अभी तक मिले नहीं, उनकी सूचना दी जाती है :

( १ ) कृष्णचंद्र-चंद्रिका अलंकारों का वर्णन कृष्ण-कथा में है; बा० सीतारामजी लालस जोधपुरवालों से ज्ञात हुआ । इसी में के कुछ छंद स्यात् "स्फुट संग्रह" में भी आए हैं ।

\* द्वितीय भाग की भूमिका पृ० २ पर इस तीसरे भाग के लिये ७ ग्रंथों के नाम दिए थे । उनके अतिरिक्त सं० ८ और ९ तथा स्फुट संग्रह और मिल गए । ग्रंथों की प्राप्ति भी दूसरे भाग में दी जा चुकी थी । यहाँ सुगमता के लिये फिर से लिख दिया है ह. ना. ।

( ४ )

( २ ) विरह-चंद्रिका गोपियों के विरह का वृत्तान्त ज्ञात और कश्यप रसादि में है। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

( ३ ) चमत्कार-चंद्रिका चमत्कार भरे काव्य के चोचलों के छंद हैं। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

( ४ ) मानयशोमंडन जोधपुर के म० मानसिंहजी का यश। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

( ५ ) चंद्रदूषणदर्पण वियोगिनी ने चंद्रमा में दोष बताए हैं। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

( ६ ) वैशाखवार्त्तासंग्रह ऋतुओं का वर्णन। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ कि यह ग्रंथ उक्त स्व० मुरारिदानजी कश्मीरवालों के पुत्र के पास है।

( ७ ) श्रीदरवाररी कविता (वा श्रीदरवार का कवित्त) उक्त लालसजी से जाना गया।

( ८ ) रस तथा अलंकार का ग्रंथ उपरि-लिखित खंडांश से अनुमान है।

( ९ ) वृत्तरत्नाकर भाषा वा व्याख्या उपरि-लिखित खंडांश से अनुमान है।

( १० ) महाभारत छंदोऽनुवाद -प्रथम भाग की भूमिका में वि० भू० पं० रामकरणजी ने इस नाम को लिखा है।

( ११ ) गीत वा छंदों का संग्रह अनेक पुरुषों से इनका फुटकल रूप में बहुसंख्यक होना सुना गया है।

(१२) ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह' उक्त श्री ओम्भाजी के संग्रह में है।

(१३) अंतर्लपिका उक्त लल्लसजी से ज्ञात हुआ कि ऐसा कोई पृथक् ग्रंथ है\* ।

इनमें से सं० ८ और ६ के अतिरिक्त [ जिनके खंडांश "स्फुट-संग्रह" में ( इस भाग में ) प्रकाशित हुए हैं ] अन्य ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आए। परंतु उनका होना उक्त महा-नुभावों के संग्रह में पाया गया। सं० १२ ( ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह ) के संबंध में उक्त म० म०, रा० ब० श्री ओम्भाजी ने हमको ता० ३०-३-३१ को लिखा था। उसका

\* पं० रामकरणजी ने प्रथम भाग की भूमिका में २४ वा महाभारत सहित २५ ग्रंथ बताए थे तथा दूसरे भाग की भूमिका में उनके वचनानुसार २७ ग्रंथ होना हमने लिखा था। हर्ष का स्थान है कि अब ग्रंथ २७ से भी अधिक प्रकट होते आ रहे हैं। २६ वा २७ से अधिक तो छप ही जाते हैं। यदि उनके आगे के अन्य ग्रंथ सब मिल गए तो ४० की संख्या तक जा पहुँचेंगे। जिस दिन "ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह" साहित्य-संसार के सामने आवेगा उस दिन उस महाकवि की विद्वत्ता और विद्याप्रेममयी प्रतिभा का प्रकाश होगा। और २००० गीतों का संग्रह डिंगल-प्रेमियों के प्रयास से संसार को मिलेगा तब तो क्या ही हर्ष होगा। ह० ना०।

पुनश्च—बांकीदासजी के आतृज मोड़जी कवि के रचे "पावू-प्रकाश" (बड़ा) में अंतिम छंदों में, ऐसा आया है : 'चवी वतीस छुतीस या बड़ा बाप मो वंक' । इसमें भी बांकीदासजी के ३२ या ३६ ग्रंथों का होना प्रतीत होता है।—ह० ना०।

सारांश यहाँ इसलिये देते हैं कि उसके जानने से ग्रंथकार की योग्यता और ग्रंथ की उपयोगिता का कुछ भान पाठकों को अभी से हो सके :

“अनुमान २० वर्ष पूर्व भुंशी देवीप्रसादजी ने वॉकीदासजी की संगृहीत “इतिहासिक बातें” नाम की हस्त-लिखित पुस्तक नकल कराकर मुझे दी थी। उसमें अनुमान २८०० से कुछ अधिक बातें हैं। पुस्तक बड़े महत्व की है। परंतु उसमें कोई क्रम नहीं है। एक बात भालवे की है तो दूसरी गुजरात की और तीसरी कच्छ की। इस प्रकार एक महासागर सा ग्रंथ है। उसको क्रमबद्ध करना बड़े परिश्रम का काम है। और अनेक पुस्तकें पास रखने से क्रमबद्ध हो सकता है। ग्रंथ क्या है इतिहास का खजाना है। राजपूताना के तमाम राज्यों के इतिहास-संबंधी अनेक रत्न उसमें भरे पड़े हैं। परंतु उनको छाँटना बड़े श्रम और समय का काम है। उसमें राजपूताना के बहुधा प्रत्येक राज्य के राजाओं, सरदारों, मुत्सदियों आदि के संबंध की अनेक ऐसी बातें लिखी हैं जिनका अन्यत्र मिलना कठिन है। उसमें मुसलमानों, जैनों आदि के संबंध की भी बहुत सी बातें हैं। अनेक राज्यों और सरदारों के ठिकानों की वंशावलियाँ, सरदारों के वीरता के काम, राजाओं के ननिहाल, कुँवरों के ननिहाल आदि का बहुत कुछ परिचय है। कौन कौन से राजा कहाँ कहाँ काम आए, यह भी विस्तार

से लिखा है। अनेक राजाओं के जन्म और मृत्यु के संवत्, मास, पक्ष, तिथि आदि दिए हैं। ... एक राज्य के तत्रल्लुक की बातें सौ-पचास जगह आ जाती हैं।..... अब इसका क्रम लगाया जा रहा है। उदयपुर राज्य की सूची बन गई है। अब मैं अपने इतिहास के क्रम से राज्यों की बातें छाँटता हूँ।”... इत्यादि। इस नोट से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह संग्रह कितने काम का है और इससे बाँकीदासजी की कैसी ऐतिहासिक योग्यता प्रमाणित होती है। वे कोरे कवि और लाखपसाव के खानेवाले प्रशासक बारैठ ही नहीं थे, अपितु बड़े ही परिश्रमी विद्वान्, लेखक और इतिहासवेत्ता विधान-व्यवसायी पुरुष थे।

इस प्रकार उक्त त्रयोदश ग्रंथ-रूप सामग्री उपलब्ध हो जाने से “बाँकीदास-ग्रंथावली” के चतुर्थ तथा पंचम भागों के लिये अच्छा अवकाश प्राप्त हो सकता है।

इस ग्रंथावली का दूसरा भाग सन् १८३१ में प्रकाशित हुआ था। इसका तीसरा भाग प्रायः थोड़े ही मासों के अनंतर बहुत कुछ तैयार हो गया था। परंतु कुछ ग्रंथों की टोका होनी थी और “हमरोट-छतोसी” तथा “कृष्ण-पञ्चोसी” के संग्रह होने तथा उनके संशोधन और टोका टिप्पणी के तैयार होने एवं शका-समाधान में बहुत समय चला गया। इसके अनंतर अनेक स्थलों से “स्फुट-संग्रह” का संग्रह होता रहा। कई एक गीत और छंद ऐसे हैं कि



उनकी टीका होनी चाहिए थी। परंतु दुःख है कि ऐसा नहीं हो सका, वे बाकी रह गए। परंतु अन्यो की टीका तो बारहट श्री मुरारिदानजी ने, बा० महताबचंदजी के सहकार्य में, कर डाली। कई अन्य अनिवार्य कार्यों ने कभी टीकाकारों को तो कभी इस चंद्र लेखक को समाप्ति तक पहुँचने से रोका। अतः बहुत सा समय व्यथा निकल गया और प्रिय पाठकों को इस भाग के प्रकाशन की प्रतीक्षा करनी पड़ी, तदर्थ विनम्र भाव से क्षमा की प्रार्थना है। पाठकों को एक हर्षवर्द्धक समाचार सुनाकर हम अपने कर्तव्य (क्षमा-प्रार्थना) को पूर्ण कर देते हैं। वह यह है कि इस अवसर में “व्रजनिधि-प्रथा-वली” प्रकाशित हो गई तथा “रघुनाथ-रूपक” सर्वांग-सुंदरता का रूप धारण करने के योग्य होने लग गया। ये दोनों ग्रन्थ-रत्न इस “बा० रा० चा० पुस्तकमाला” के माणिक्य होंगे।

### बाँकीदासजी की जीवनी के संबंध में

बाँकीदासजी के जीवन-चरित के संबंध में नीचे लिखी बातें और ज्ञात हुई हैं :

( नोट १--व०के भतीजे कवि ग्रामिया बुघा की, महाराजा मान-सिंहजी की नारीफ में वही हुई “दुचायैत” में से बाँकीदासजी के संबंध के छंदादि। ये बातें बुघा ने अपनी आँखों देखी लिखी हैं, इसमें महत्त्व की है। )

( नोट २ कवि बुधा ने महासंदिर् और महामंदिर के वाग का वर्णन करके महागज मानसिंहजी के सभासदों का वर्णन किया है । उसमें काव्य और शास्त्र की चर्चा चली तब कवियों को सभा में बुलाया गया । उसमें कविवर कविराजा वांकीदासजी भी आए और उस समय उनकी योग्यता का जो वर्णन बुधा ने किया है वही अश यहाँ दिया जाता है : )

“मानूँ देवूँ की सभा इंद्र कै रूप ।

ऐसी बिध बैठे जोधाँण के भूप ॥ १५१ ॥

चरचा की बात चाली कविरावूँ कूँ बुलाए ।

सौ चरचा करण कूँ कविराव भी आए” ॥ १५२ ॥

### कविराव-वर्णन

“जिसही देवानाथकै आगै । सोदुसगराम ॥

चारणूँ की ओट । विद्या का धाम ॥ १५३ ॥

दोलाका जाया । सादुउका छात ॥

विद्या में विसेक । ऐसा माहापात ॥ १५४ ॥

सब ग्रंथूं समेत । गोताकूँ पिछाणै ॥

डोंगल का तो क्या । संस्कृत भी जाँणै ॥ १५५ ॥

यह बुधा कवि वांकीदासजी का भतीजा या भाई था । स्वयं अच्छा कवि था । इसकी कुछ कविताओं का संग्रह हमारे पास है वही पुस्तकाकार इसी माला में “बुधा-अंधावली” भाग १ नाम से प्रकाशित होगा ।—ह० ना० ।

आपभी असंघ । उक्त अनाठी धरै ॥  
जिस भांगे की जोड़ की । कुण कविसे हाँड करै ॥ १५६ ॥  
जिसका वदे आपर । सब धरा का भूप ॥  
वंस का उदोत । वरन का रूप ॥ १५७ ॥  
औरभी सोंदुआमें । चैन अरु पोथ ॥  
डोंगल में पृव । गजव जमका गीत ॥ १५८ ॥  
और भी आसीयूं में । कवि बं क ॥  
डोंगल पोंगल संस्कृत । फारसी में निसक ॥ १५९ ॥  
मत अरु मतंक । सदरासभसमुधी ॥  
कुतवीकातो क्या । मीरेबाजगां मैवूधो ॥ १६० ॥  
हाफिजां उरसी हेलव । साहनांमा सीराज ॥  
वगलष छोय बगदाद । तास किनानरूम ताज ॥ १६१ ॥  
मिसनवी दीवान भीछना । सिकंदरनांमा सार ॥  
सीसथॉमायरॉसमेत । औरभी कितावां अपार ॥ १६२ ॥  
जिस बं क कूँ हसती अरु घोड़ा । सुपपालू गांम ॥  
मोती कड़ा सूँदड़ा । और भी रोकड़ा दाम ॥ १६३ ॥  
लाष पसाव समाप कै । कुरव ऊठण का दीया ॥  
औसी विध माँन महाराज । बं क कूँ भाषा-गुर कीया ॥ १६४ ॥  
औरभी जुगतावण सूर । सवाइतेजमाल ॥  
वस का दावा । वरन का ढाल ॥ १६५ ॥  
वीसोतर का छोगा । दिल का उदार ॥  
जस जुगतेस कूँ बषाँथै । सबही संसार ॥ १६६ ॥

चक्रधारियूँ की गदा आँकस । विधा का समंद ॥  
महाराज का दवागीर । जैसे जैसे कवंद ॥ १६७ ॥  
साक्षात् सरस्वती का भंडार । जैसे कविराव आए ॥  
सो हिंदुआण का सूर । माँन महाराजकूँ विरदाए ॥ १६८ ॥  
विछायत पर बैठे । सरब ही कवीसर ॥  
अवरी का कोड । जिसकूँ सरस्वती का वर ॥ १६९ ॥  
जिस विछायत पर । थटाव चरचा के थहे ॥  
और भी कवी सुराँवै । क्या क्या ग्रंथ कहे ॥ १७० ॥  
चौरासी रूपग । अठारै पुराँण ॥  
चवदै शास्त्र । वेद च्यार का वषाँण ॥ १७१ ॥  
और भी षट भाषा । नव व्याकरण ॥  
भाँत भाँत का ग्रंथ । भाँत भाँत का गण ॥ १७२ ॥  
विध विध की चतुराई । विध विध के विधान ॥  
सो सब ही सुणे । महाराजा माँन ॥ १७३ ॥

इस उपरि-लिखित उद्धरण से स्पष्ट है कि बाँकीदासजी का सम्मान और पद जोधपुर की राजसभा में कितना उच्च था और वे संस्कृत, प्राकृत, डिगल, पिंगल और फारसी आदि के कैसे पंडित थे । फारसी की कई किताबों के नाम भी बुधा कवि ने लिख दिए जिनको बाँकीदासजी ने पढ़ा था और उनकी फारसी की लिखाकत का प्रकाश महाराज मानसिंहजी की राजसभा में अन्य अनेक कवियों और पंडितों के सामने हुआ था । “फारसी में निःशक” बेधड़क कहने-

वाले थे । मीरबायजगॉं शायद मसनवी आजरेबायजॉं हो । हाफिज से मतलब दीवाने हाफिज । उरसी शायद कसायदे उर्फी हो । हेलब शायद यहयाउलउल्म हो । साहनांमा से तात्पर्य शाहनामा फिरदौसी । शीराज से मुराद सादी शीराजी । बगलब शायद बलख बुखारा । बगटाद से मदरसए बगदादी निजाभिया की इतिहाई दर्सी किताबों से मुराद हो । किनान से कनअर्रॉं मुल्क हो । रुम से मसनवी मौलाना रुम । कनअर्रॉं से माहे कनअर्रॉं से मुराद अर्थात् यूसुफ जुलैखा हो । ताज से मुराद अरब के उलमा की किताबें । मसनवी से और भी मसनवियाँ जैसे मसनवी मीरहसन वा दिलसनोवर इत्यादि । दीवाने से दीवाने हाफिज बगौरह । सिकंदरनामा बहरी वृर्वरी । सीसथॉं से उत्तम पहलवान या उसके मुल्क सीसताँ की दास्तानों से हो ।

बाँकीदासजी को लाखपसाव, हाथी-पालकी सिरोपाव, कड़ा बल्लेबडा आदि तथा ताजोम सोना इत्यादि मिले । महाराज ने बाँकीदासजी को अपना भाषा-गुरु बनाकर सम्मानित किया और उनसे विधा पढ़ी ।

“गजब जिसका गीत” ऐसा कहने से बाँकीदासजी की गीत-रचना की उत्तमता प्रकट है, कि उनके दिल दहला देने-वाले, वीररस उपजानेवाले गीत बहुत प्रभावोत्पादक होते थे । इत्यादि उक्त वर्खाण्ड से अनेक बातों को संकेत और पते लगते

हैं। डिंगल भाषा से गीत-रचना ही प्रधान मानी जाती है और बारहट कवि गीतों को बहुत ही सावधानी, चतुराई, श्रोज और शक्ति से भरकर कहते हैं। फिर उनका बोलना बहुत ही आग उनमें फूँक देता है। उनके मुख की "सरस्वती" उनके गीतों को सौगुना रोचक और मजेदार बना देती है। इनके गीतों ने कायूरोँ को वीर बना दिया, गई बीती लड़ाइयों को जय प्रदान करा दी, भगोड़ों के दिलों में वीर-रस भरकर युद्ध में लड़ाकर जय दिला दी, रियासतें उलटी दिला दीं और न जाने कितने और 'गजब' ढा दिए। इसी रंग-ढंग के गीत बनाने और कहनेवाले बाँकीदासजी भी थे। "स्फुट संग्रह" के गीत सं० ( १७ ) में बाँकीदासजी ने स्वयं अपनी विधा, प्रतिभा और जानकारी को बताया है। इसको पढ़ना उचित है। "चौंसठ अवधान...।"

( २ ) बाँकीदासजी के संबंध में सीतारामजी लालस जोधपुरवाले लिखते हैं :

( क ) "बाँकीदासजी के पिता फतहसिंहजी का विवाह बागसी की सरवड़ी परगना सिवाना, इलाका जोधपुर, में हुआ था। बाँकीदासजी के मामा चार भाई थे। बचपन में बाँकीदासजी ने कुछ समय तक सरवड़ी गाँव [अर्थात् ननिहाल ही] में विधा प्राप्त की थी। एक समय जब वे १३ ही वर्ष के थे [ संभवतः सन् १८५१ वि० हो ] तो उनको उनके मामा ऊकजी बाले गाँव के ठाकुर नाहरसिंहजी के पास ले गए।

जंकजी ने बालक की प्रशंसा की कि भाँगूँ बहुत हीनदार सालूम देता है। जो खूबडजी\* [ उनकी कुलदेवी ] की पूर्ण कृपा रही तो भविष्य में बड़ा भारी कवि होगा। इस पर ठाकुर ने पूछा कि क्या यह कविता भी करता है ? तो जंकजी ने कहा कि हाँ यह कविता बढ़िया करता है। यह भाँगूँ आशुकवि अभी से है। इस उत्तर को सुनकर ठाकुर ने कविता करने की आज्ञा की। इस पर बालक बाँकीदासजी ने तुरंत दो दोहे और एक सैथोर गीत रचकर सुना दिए। बालक की अनूठी कविता से ठाकुर प्रसन्न हुए। और कहा कि यह भाँगे वही हूँ। बाँकीदासजी मोताज लेने से इनकारी हो गए। उस पर ठाकुर ने हुक्म दिया कि इस बालक कवि को एक अच्छा सा धोड़ा दे दो और कानों में सोने की मुरकियाँ [ मोती की जगह ] पहना दो। परंतु बाँकीदासजी ने फिर भी लेने से इनकार किया। इस पर ठाकुर के कामदार ने बाँकीदासजी से कहा कि क्या तुम्हारा विचार हाथी लेने और मोती-कड़ा पहनने का है जो इतना कहने पर भी लेने से इनकार करते हो। इस ताने पर बाँकीदासजी को कुछ क्रोध आ गया और वे बोले कि यदि खूबडजी (माताजी) की मेहरबानी जैसी आज है वैसी ही आगे भी

\* खूबडजी” चारणों की एक कुलदेवी का नाम है। इस देवी का स्थान सरवड़ो में है। इसको “खँडेदेवल” की माय भी कहते हैं। लालस सीतारामजी।

बनी रही तो अवश्य ही एक दिन हाथी सवार हूँगा और कड़े मेती पहनूँगा । इतना कहकर ठाकुर से लमा भँगाकर अपने मामा के साथ बाँकीदासजी गाँव को लौट आए । होनहार कवि की यह प्रतिज्ञा कैसी उत्तम रीति से उसके जीवन में पूरी हुई सो बाँकीदासजी और महाराज मानसिंहजी के चरित्र में स्पष्ट ही है । एक समय कविराजा बाँकीदासजी हाथी-सवार जोधपुर में होकर जा रहे थे उसी समय उक्त ठाकुर रास्ते में मिले । तब अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने को उक्त ठाकुर को कारण मानकर कृतज्ञता का एक सौरठा कहा । यह सौरठा प्राप्त नहीं है । \*

उक्त लालसजी ने बाँकीदासजी का एक दूसरा आख्यान लिख भेजा है । वह इस तरह है कि कविराजा बाँकीदासजी अपने गाँव जाते तब खाँडप गाँव भी जाया करते क्योंकि उसमें लाधूसिंह सोलंकी चरित्र रहता था जो अपने आतिथ्य-सत्कार के लिये विख्यात था । उसका यह दृढ़ प्रण था कि उसके यहाँ या गाँव में कोई भी पुरुष अतिथि आ जाता तो उसको बिना आतिथ्य-सत्कार के वह जाने ही नहीं देता था । बाँकीदासजी का इससे बड़ा स्नेह था ।

\* स्व० डा० भू०सिंहजी के “विविध संग्रह” में रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंहजी को कृतज्ञता का दोहा बाँकीदासजी ने कहा था सो पृ० ११६ पर देखें । तथा “बा० दा० ग्रं०” प्रथम भाग की भूमिका पृ० १०, ११ पर आख्यान देखें । ह० ना० ।



खाँडप गाँव सरवड़ी के समीप ही था। और “लाधा” की उदारता से बाँकीदासजी को उससे दिली ताल्लुक हो गया था। एक समय की बात है कि महाराजा मानसिंहजी ने कविराजा बाँकीदासजी से पूछा कि “दूला” जैसा उदार राजपूत अब भी कोई है ? तब उत्तर में कविराजा ने अर्ज किया कि अब भी है, और इसही “लाधा” का आख्यान कह सुनाया, और लाधा की प्रशंसा में नीचे लिखा एक गीत भी पढ़कर सुनाया :

छंद छोटा साँगीर

“भरहरियो आम न कूमोडे भड, विषमों जग परहरियो वाव ।  
जो बगणतरो थरहरियो जग में, चालक न परहरियो चाव ॥१॥  
अँन विन लोक चहुँ चक ओड़ै, गया मालवे छोड़े गेह ।  
देवों नाडकाँ छेह दिखायो, आसावत दरियाव अछेह ॥२॥  
मानव विकै पाव अँन साटे, दुरभिष जग में ताव दियो ।  
अँन राँधे कोरे नह ऊतर, लाधे हद सो भाग लियो ॥३॥  
भेटे कोथ गयो नँह भूषो, परजाची कीधो प्रतिपाल ।  
खोटे समय उणतरे खाँडप, सोलकी दरसियो सुकाल ॥४॥”

इस दातार के प्रण का आख्यान और उक्त गीत को सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और बाँकीदासजी को कहा कि ऐसे दानवीर राजपूत को हम भी देखना चाहते हैं। कविराजा ने उसको बुला भेजा। उसके आने पर महाराज ने उसको मेहरवानी करके उसके गाँव खाँडप ही में जागीर

इनायत की। लाधा के वंशज उस जमीन को अब तक खाते हैं। लाधा सोलंकी के वंश के राजपूत सदा से वीर और परोपकारी होते चले आते हैं।

महाराजा अजीतसिंहजी के समय में ओठी लोग खौंडप गाँव को लूट-खसोट करने लगे तब उनके साथ लड़कर यह लाधा वीरगति को प्राप्त हुआ और अपनी कीर्ति संसार में अमर कर गया।

( ४ ) उक्त लालसजी ने अपने पत्र ता० २०।१।३२ में एक चमत्कार कविराजा बाँकीदासजी का लिखा। महाराज मानसिंहजी के समय में कहीं से एक अशुभारथ नाम का कवि जोधपुर में आया और जोधपुर के कवियों की योग्यता का अंदाजा करने तथा उनको विजय करने के विचार से उसने एक छप्पय लिखकर महाराज की सेवा में पेश किया और अर्ज कराया कि आप कवियों का आदर करते हैं, आपके पास कई प्रसिद्ध कवि भी हैं, अतः मेरी छप्पय का अर्थ आपके किसी कवि से करा दिया जाय तो मैं जानूँगा कि आपके पास कोई कवि है, नहीं तो आपको ये लोग धोखा दे रहे हैं। इनमें वास्तव में कोई योग्य कवि है नहीं और आपको विद्वानों की पहचान नहीं है। छप्पय को महाराज ने बाँचा विचारा, परंतु अर्थ खुला नहीं। तब छप्पय को बाँकीदासजी के पास अर्थ कर देने को भेजा। बाँकीदासजी भी प्रथम तो इस ओधड छप्पय को पढ़कर चक्र में पड़ गए।

परंतु फिर उस पर विचार करके उसके प्रयोजन और तात्पर्य को समझ गए। और अच्छी तरह संगति बिठाकर महाराज को अर्थ निवेदन करके अर्ज किया कि सभा के बीच में उस कवि को बुलाकर इसका अर्थ सुनाया जाने का प्रबंध करा दिया जाय। महाराज ने प्रबंध करा दिया। सभा में वाँकीदासजी ने उस छप्पय को और अर्थ को इस प्रकार कह सुनाया:

### छप्पय

“भुरत पत्र भुर गए तु पत्र, न न पत्र सु भुर गए।

भुरत अंव भुर गए तु अंव, न न अंव सु भुर गए ॥

खुलत कमल खुल गए तु कमल, न न कमल सु खुल गए।

भमत भमर भम गए तु भमर, न न भमर सु भम गए ॥

अंबराय विद्वान पर उपव्यो अम सोचत विसर।

चंदवदनी चंदा श्रवे विलखत चद सुकवन पर ॥”

वाँकीदासजी ने इस छप्पय का अर्थ व प्रयोजन इस प्रकार बताया कि कोई तीन स्त्रियाँ सहेलियाँ आपस में अपने पतिदेवों के पुनरागमन के संबंध में, जैसा कि स्त्रियों का यौवनावस्था में स्वभाव होता है, बातें करती हैं। उनमें पहली ने दूसरी से कहा कि हे सखी तू देख धृत्तों के पत्ते झड़ झड़कर गिरते हैं और दूसरी ने कहा कि हाँ गिर गए हैं अर्थात् पतझड़ का मौसम आ गया और वसंत ऋतु आने-वाला है सो पतिदेव ( अपने वार्दे के अनुसार ) अब अवश्य

आ रहे होंगे । तो तीसरी ने कहा कि पत्र तो झड़ गए परंतु अभी वसंत नहीं आई । यदि आ जाती तो पतिदेव आ ही जाते । इस पर पहली ने कहा कि वसंत का न आना तू कैसे कहती है, देख आँव के वृक्षों के मोर ( बगर ) आ गए ( यह खास वसंत का लक्षण है ) । इस पर दूसरी ने कहा हाँ, आँव के तो मोर आ ही गए । इस पर तीसरी ने कहा कि नहीं नहीं आँवे मोरीजे नहीं ( अर्थात् तुमको प्रेम के आवेश ही में ऐसा दृश्य सा केवल प्रतीत होता है ) क्योंकि आँव मोरीज जाते तो ( वसंत-आगमन में ) पतिदेव अवश्य आ जाते । इसी प्रकार कमलों के खिलने और भँवरों के गुंजारते फिरने को देखकर तीनों में विवाद हुआ । तीनों सखियों के प्रियतम पतिदेव विदेश जाते हुए अपनी प्रियतमाओं से वसंत ऋतु तक लौट आने का वादा ( वचन ) दे गए थे । उस प्रतीक्षा में आपस में ये विरह-कातर युवतियाँ प्रेमालाप कर रही हैं । उनकी अवस्था प्रेमोन्माद की सी हो रही है । एक कहती है, वसंत आ गई, दूसरी उसकी पुष्टि करती है तो तीसरी उनकी बात का विरोध करती है । और फिर उनमें कोई अपनी कही बात ही का भ्रम करती है, कोई विस्मृत होती है तो किसी को चंद्रमा का उदय मानों अमृत टपकानेवाला देवताओं का विमान ही है जिसमें उसके प्रीतम आ रहे हो ऐसा विस्मय होता है । फिर चाँद को देखकर अपनी भूल पर अफसोस करती है और यथार्थ स्मृति

हो जाने पर कहती हैं कि नहीं चाँद तो जगा है । यह किसी पर भी अमृत नहीं बरसाता है और न यह विमान ही है जिसके द्वारा प्रीतम आते हैं, इत्यादि। इसमें तीनों नायिकाएँ स्वकीया प्रोषितपतिका हैं । इनमें उत्तमा, मध्यमा, कनिष्ठा का भेदाभास भी है । इसमें अलंकार विभावना, संभावना पर्याय और संदेह का संकर है । इत्यादि काव्याङ्गों के विरुद्ध वर्णन के साथ कविराज ने व्याख्या की तो वह अंवारच कवि मुग्व हो गया और महाराज से भरी सभा में अर्ज की कि यह कवि आपका कौरा कवि ही नहीं है, यह तो दूसरा गणेश है । महाराज मानसिंहजी ने तभी से वॉकीदासजी को प्रसंग-वश इस नूतन नाम "गणेश" से संबोधित किया । वस्तुतः यह पदवी बुद्धि का प्रखरता, अलौकिक सूक्ष्म-वृक्ष के कारण ही नहीं शरीर की स्थूलता के कारण भी ठीक फवती हुई थी ।

( ५ ) वॉकीदासजी के तीन भाई और थे । इनके एक भाई ने ( जो अच्छा कवि था ) "पावूप्रकाश" ग्रंथ बनाया जो इसके वंशज करणीदान के पास है । यह करणीदान भी अच्छा कवि है और उसने "करणी-प्रकाश" ग्रंथ बनाया है । "पावूप्रकाश" ग्रंथ दोहा, चौपाई, तोटक आदि छंदों में है और कविता उच्च कोटि की है । इस ग्रंथ को यह करणीदान सहसा किसी का धीजता वा दिखाता नहीं है । जोधपुर के महाराज कर्नल सर प्रतापसिंहजी ने उद्योग किया

और भी कई लोगों ने उद्योग किया परंतु यह पुरुष ग्रंथ किसी को नहीं देता है। इसकी ऐसी इच्छा तो है कि वीकानेर के महाराज चाहें तो उनको दे दें। ( यह वार्ता जेबनेर ठाकुर साहिब रा० बा० राज्य श्री नरेंद्रसिंहजी के मुख से सुनकर लिखी गई। ) क्या ही अच्छा हो कि महाराज वीकानेर इस कवि को बुलाकर आदर करें और यह ग्रंथ उससे श्रवण करें और अपने पुस्तकालय में रखावे तो डिगल-साहित्य के ऐसे रत्नों की रक्षा हो जाय नहीं तो ये नष्ट हो जायेंगे\* ।

( ६ ) वाँकीदासजी की महिमा में इस भाग के “स्फुट संग्रह” में “केसो इंद्रजीत...” सं० २ यह कवित्त बहुत गौरव का है। उसे अवश्य देखें विचारें।

\* “पावप्रकाश” एक बड़ा और एक छोटा छप गए जो हमारे संग्रह में है। एक बड़ा मोड़जी आसिया का रचा है। यह मोड़जी बुधाजी का बेटा था। बुधाजी वाँकीदासजी के भतीजे वा भाई बताए जाते हैं। ह० ना० ।

मोड़जी का पुत्र पावदान है, करखीदान नहीं है, यह संशोधन एक सीतारामजी लालस ने कराया है। ह० ना० ।

“पावप्रकाश बड़ा” तो “सुमेर प्रेस” जोधपुर का संवत् १९८६ का छपा हुआ है। इसका रचयिता मोड़जी है। पुस्तक के अतिम अधो में ये दोहे संवध प्रकट करते हैं

ग्रंथों का सार-सूचना

इस तृतीय भाग के अंतर्गत ग्रंथों का परिचय, उनकी सारावली तथा उनका संक्षिप्त माहात्म्य दिया जाता है कि जिससे पाठको को सुविधा रहे। कई ग्रंथ ऐतिहासिक हैं जिनमें से इतिहासांश के स्पष्टीकरण की आवश्यकता जानकर वहाँ नोट लगा दिए हैं। इनमें संख्या १ और ६ तथा ८ में भारतवर्ष के प्रसिद्ध दाताओं और वीरों के यश-प्रकाशन की पूर्ण चेष्टा की गई है। कवि की जानकारी और वर्णन-विधि अत्यंत सराहनीय है। कवि के यथार्थ आशय को अनेक स्थलों में हम प्रकट करने में असमर्थ और असहाय रहे हैं। यह कार्य अन्य विद्वानों के लिये शेष रहा ही

चली बतीस छतीस या बडा बाप मो बंक ।

तवूँ भाग जाई तिके आखर आडे अक ॥ १ ॥

मालमधर बुधमालरा आखर चावू ओड़ ।

कह दूंपग चेला किया रेणाकज राठोड़ ॥ २ ॥

कवराजा नरपत कियो मेघा पारख मान ।

कव मत मंडण गुण कियो बंधू बाँकीदान ॥ ३ ॥

पाल पोरसातन प्रगट जोड नाम दिय जव ।

कव जूँजाऊ गुण कियो मोडै पोछ मुजव ॥ ४ ॥

“पावूप्रकाश” छोटा जोधा अगरसिंहजीकृत जोधपुर का ही छपा है। पृ० सं० ३६ है बुधाजी का भी कविराज होना पाया जाता है। अर्थात् बुधाजी भी कविराज हुआ। ह० ना० ।

समझना चाहिए । अन्य ६ ग्रंथों में नीति, उपदेश, शिक्षा, विशेष वर्णन, कुनीति-निवारणार्थ सदुपदेश-प्रकाशन बड़ी ही उत्तमता से आए हैं, सो पाठको को, ध्यानपूर्वक पढ़ने से ही, अवगत हो सकेंगे और तभी लाभ और आनंद मिल सकेगा ।

( १ ) “जेहल जस जड़ाव ”

यह ७४ दोहों-सोरठो का ग्रंथ बाँकीदासजी ने कच्छ-भुज के प्रसिद्ध राजा जेहल के यश-गायन में कहा है । यह जेहल, जेसल या जेहा भारामल जाड़ेचा का पुत्र था । इसलिये इसको “भाराणी” भी लिखा है, जैसे फूलाणी (फूल का पुत्र) । यह जाड़ेचा यादवो का प्रसिद्ध वीर और दातार हुआ है जिसका नामी पूर्वपुरुष “सम्म” वा “सभो” था । इसी कारण जेहल को कवि ने “सामां” ऐसा भी नाम देकर संबोधन किया है । यथा “दोहा ३० में सामां इंद समंदतू । तथा दोहा ३३ में “सामां दाता दोठ सह” । इसी तरह सोरठा ५१, ५२ और ६५ में भी । साम की १४७वीं पीढ़ी में “ऊनड” हुआ जो बड़ा दानी और वीर था और सिंध के पास के इलाके का राजा था बिलोचिस्थान और सिंध के बीच का विभाग । इसका बड़ा भाई “जाम मोड़” था जो कच्छ का राजा हुआ । इसकी चौथी पीढ़ी में फूल का पुत्र प्रसिद्ध लाला फूलाणी हुआ जो बड़ा वीर और दानी था ।



और याचकों में प्रातःस्मरणीय गिना जाता है । इसकी कुछ पीढ़ियों के पीछे भारमल के यह जेहल हुआ । भारमल वा भारा यह कई जगह इस ग्रंथ में आया है और जेहल ( वा जेहा ) को भारमल का पुत्र लिखा है । यथा- “भारा राव” छंद १ में । दोहा ३६ में मो वर भारहनन्द, दोहा ५० में “भाराणी जस भार”, सौरठा ५३ में “भाराणी भूलो नहीं”, सौरठा ५४ में “सुनजर भारहमाल सुत” । सौरठा ५६ में “भारानंद चकोर भत ।” ऐसा आया है । इसको कच्छ का राजा कहा है यथा दोहा ३ में “काछ नरेस कुँवार ।” और आगे चलकर “भुज” का राजा कहा है—यथा दोहा १४ में “भुज जेहल नूँ भेटियो ।” और दोहा २१ में “इय भुजनूँ आवंत” । सौरठा ५० में “भुज मडण थारा भुजाँ” । सौरठा ५५ में “भुजरो भलो भवाड़ियो ।” इसके पूर्वज ऊनड़ और लाखा थे सो कवि ने भी बताया है । यथा दोहा १२ में है “जेहो ऊनड़-हरो” । सौरठा ५३ में “ऊनड़रो आचार” । दोहा ७ “सुंणजस गाजै सरग मे ऊनड़ लाखा भूप । भाराणी दाता भलो राणी जाया रूप” ॥ ये जाड़ेचा यादव थे, इसको कवि ने स्पष्ट दरसाया है और वंश का गौरव वर्णन किया है । यथा दो० ६ में—“व्याँ जेहा जादव जिसो ।” तथा दो० १७ में “हव जादव जस वस हुवोँ जग जाहर जेहल्ल ।” दो० ११ में “जाड़ेचा धर जोत ।” सो० ४६ में “जाड़ेचा दाखै जगत” ।

इससे स्पष्ट है कि ये जाड़ेचा खाँप के यादव-वंश के थे और परंपरा से वीर और दानी होते आए हैं। (“रासमाला” से सार उद्धृत किया जाता है।)

“रासमाला” ( फार्वस साहिब का गुजरात का इतिहास-संग्रह ) में लिखा है कि गजनी की गद्दी पर जामनर-पति राजा था। उसकी १३वीं पीढ़ी में “सामपत” उर्फ “सर्मा” हुआ। इसी से इसके वंशज “सर्मा” कहलाए जो आगे चलकर जाड़ेचा नाम से प्रसिद्ध हुए। जाम सर्मा के हाथ से मुसलमानों के युद्ध में गजनी जाती रही। फिर ये बिलूचिस्तान और सिंध के बीच में आकर बसे और वहाँ राज्य किया। सर्मा की १४ वीं पीढ़ी में “लखियार भड़” राजा हुआ। उसके लाखोजी १ और लाखोजी के ऊनड़ हुआ। यह लाखोजी पहिला था। ऊनड़ का बड़ा भाई “जामभोड़” हुआ। वह कच्छ में पाटगढ़ के राजा वाघम “चावड़ा” से ( जो इसका मामा था ) राज्य लेकर सन् ८१६ ई० में गद्दी पर बैठा। उसके “साड़जी” हुआ। इसने कंथकोट का किला सन् ८४३ ई० में पूर्ण कराया। साड़जी के फूलजी हुआ जिसने ८५५-८८० तक राज्य किया। इसके बाद लाखा फूलाणी हुआ जिसने ८८० से ९७६ तक राज्य किया।

म० म० पं० गौरीशंकरजी ओझा ने लाखा फूलाणी का समय (जनवरी फरवरी सन १६०४ के “समालोचक” पत्र में) ११वीं शताब्दी लिखा है। उन्होंने अनेक दृढ़ प्रमाणों से

सिद्ध कर दिया है कि यह लाखा फूलाणी विक्रम संवत् १०३६ ई० ६८० से अन्हिलवाड़े की लड़ाई में मूलराज के हाथ से मारा गया\* ।

अब देखना यह है कि जेहल लाखा फूलाणी से कितने वर्ष पीछे हुआ तथा लाखा फूलाणी की ख्याति (कीर्ति) कैसी थी जिसके वंश में जेहल हुआ था । म० म० श्री गौरी-शंकरजी ओम्का से पत्र द्वारा जिजासा की तो ता० ३० दिसंबर सन् २६ तथा ता० ३० मार्च ३१ के पत्रों में उन्होंने अनुसंधान-मय वृत्त लिखे हैं । उनका सार यह है कच्छ का प्रतापी व महाधनाढ्य राजा खेंगार था जिसने वि० सं० १५६६ से १६४२ तक राज्य किया । खेंगार ने बड़ी संपत्ति इकट्ठी की थी परंतु उसका उपभोग कुछ नहीं किया । खेंगार का पुत्र भारा ( भारमल ) हुआ था, जिसने १६४२ से १६८८ तक राज्य किया । भारमल ने पिता की संपत्ति का खूब उपभोग किया । इसके संबंध में अब तक यह कथा-वते चली आती हैं ( १ ) 'खाटी खंगारे भोगी भारे' ( २ ) 'खाटीराव खंगार भारमल भुगती धरा' । भारमल का

\* श्री ओम्कार्जी ने अपने संगृहीत लेखों से, अनेक शिलालेखों से, मूलराज का समय संवत् १०१७-१०२२ सिद्ध किया है । परंतु "मारवाड़ के मूल इतिहास" के पृ० २७ के फुटनोट में पं० रामकरणजी ने लामर के गिलालेख से मूलराज का समय ६६८ वि० लिखा है जो उसके राज्या-रंभ से भी पूर्व का है । यह स्थल विचारणीय है । ह० ना० ।

बड़ा बेटा जेहल था जिसको जेहा या जैसल भी कहते हैं । जेहल ने अपने पिता के सामने ही बाबा की अतुलित संपत्ति का भोग प्रारंभ कर दिया और इतना दान किया कि कँवर-पदे में ही विख्यात हो गया परंतु अपने पिता भारमल के सामने ही मर गया और अपना नाम अमर छोड़ गया । इसी जेहल का जस बाँकीदासजी ने इस ग्रंथ ( जेहल-जस-जड़ाव ) में गाया है । बाँकीदासजी की संगृहीत 'ऐतिहासिक वार्ता सग्रह' हस्त-लिखित पुस्तक की सं० ४६६ में भाटी जैसा को हरबू साँखले का दुहिता लिखा है । कच्छ के जाड़ेचे भाटी ( यादव ) हैं । इनके पूर्वज संभा कहाते थे जिनका राज्य सिंध में था । ये भी **संभ** कहाते हैं । जेहल के पहले ही मर जाने से भारमल का उत्तराधिकारी उस ( भारमल ) का छोटा बेटा भोजराज हुआ था । भारमल के पूर्वजों में लाखा, फूल का बेटा, बहुत पहले हुआ था जो बहुत प्रसिद्ध हुआ था । लाखा से सात पीढ़ी पहले ऊनड़ हुआ था । ये इस वंश के बहुत प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं । बादशाहों से भी कच्छ के राजाओं का संबंध अच्छा रहा है । सं० १८७६ ई० के छपे हुए आत्माराम केशव द्विवेदी के बनाए हुए "कच्छदेशनो इतिहास" नामक ग्रंथ में भारमल के विषय में लिखा है कि अकबर बादशाह ने गुजरात अपने अधीन करके मुजफ्फर को गुजरात से निकाल दिया तो उसने बागी होकर बड़ा नुकसान करना प्रारंभ कर

दिया। इस पर उसको पकड़ने के लिये गुजरात का सूबेदार आजम कोकलताश मुकर्रर हुआ तो उसका इसने पीछा किया तो मुजफ्फर ने जामनगर के जाम सत्ता के यहाँ शरण ली। कोकलताश ने शाही चोर को माँगा। परंतु जाम ने अपने शरणागत को नहीं दिया। इस पर कोकलताश ने कच्छ के राव भारमल (भारा) तथा आसपास के राजाओं से मदद लेकर जाम पर चढ़ाई की और फतह पाई। जहाँगीर के समय में भी भारमल का सम्मान होने की बात उक्त पुस्तक में आई है। इससे प्रकट है कि दिल्ली के बादशाहों से इस वंश के राजाओं ने मेल जोल अच्छा रखा था\*। इति

इसके अतिरिक्त इस वंश का लाखा फूलाणी सबसे अधिक प्रसिद्ध हो गया है। वंदीजनों में वह प्रातःस्मरणीय है। इसके पँवाड़े, गीत, छंद, दोहे सोरठे प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक इधर जयपुर में प्रसिद्ध है। “भाया भाँगी बाँधला कै लाखै फूलाँणी। रहती पैती मँण गयो हरगोविंद नाटाणी।” दातारों के नामोच्चारण में छंद कहे जाते हैं उनमें से कुछ वानगी ये हैं:

\* सुंशी देवीप्रसादजी हिंदी 'जहाँगीरनामे' के पृ० ३०६-३३० और ३३२ पर, सावन संवत् १६७५ में "राव भारा" का बाहशाह पास हाजिर होकर नजर करना और उसकी सेवा का हाल लिखा है। उस समय भारा ६० वर्ष का था। ह० ना०।

“लाखा सरीखा लख गया, अनड़ सरीखा आठ ।  
हेम हराऊ सारिखा बले न बहसी बाट” ॥ १ ॥

यह अनड़ स्यात् ऊनड़ होगा । हेम हराऊ के बारे में यह दोहा है :

“लालों किया विछाँवणों हीरों बाँधी पाज ।  
काँटों मोती पोड़गो हेम गरीवनवाज ॥ १ ॥

( क० मुरारिदानजी से प्राप्त )

हरगोविंद नाटाणी जयपुर का खँडेलवाल महाजन था जिसने महाराजा ईश्वरीसिंहजी को धोखा देकर केशवदास खत्री मुसाहिव को तो जहर पिलवाकर मरवा दिया और आप मुसाहिव हो गया, और राज्य के धन को ऐश-आराम और दातारी में उड़ाकर दातार मशहूर हो गया । और मारके का काम पड़ा तब साधोसिंहजी में मिल गया कि जिससे ईश्वरीसिंहजी को भी विष से आत्म-हत्या करनी पड़े । यह भारी हरामखोर था तो भी याचको ने इसके दान की प्रशंसा की । उसी समय का ईश्वरीसिंहजी का यह मर्म-स्पर्शी वाक्य है

“साँचे। तू ईसरा भूँटी या काया ।  
प्याला केशोदास ने पाया सो पाया” ॥ १ ॥

एक छप्पय में अन्य दातारों के नामों के साथ लाखा फूलाणी का भी नाम आया है, यथा

“दावराँण उम्भेद दुखद गीतों रादेतो ।  
देतो हाडो नॉहि लोल अति भहँगा लेतो ॥  
नहिं बाघां राठोड़ नहीं शेरों सादायीं ।  
नहिं जाड़ेचो जाम नहीं लाखो फूलोंगी ॥  
दातार इता दीसै नहीं करता रसा परलै किया ।  
कवीसर अब कीजै किसूँ गीतारो गाहक गया” ॥१॥

( क० मुरारिदानजी से )

इसका प्रत्युत्तर भी किसी ने ( स्यात् बाँकीदासजी ने )  
दिया

“अजे भीम आहाड़ों अजे सुरजो वीकाणें ।  
अजे अचल ऊमरों, जग सारो जस जाणें ॥  
अजे आतो गोहिलाँ, अजे माधव रिडमालाँ ।  
अजे मान जोधाँण, पात वैठा सुखपालाँ ॥  
कुलमोडरमण काँधावताँ, किम जाणें कीरत कली ।  
नेसती-पणें दीसे नहीं अजेऽपि आसत ऊजली” ॥१॥

( क० मुरारिदानजी से )

किसी अन्य कवि की उक्ति बड़े मारके की है जिसमें  
लाखा की महिमा दरसाई है

“लाखा पुत्र समुद्र का, फूल धरे अवतार ।  
पारेवाँ मोती चुगो, लाखारे दरवार” ॥ १ ॥

( “समालोचक” पत्र जनवरी १९०४ के ले )

“पल्लोशी हीरे जड़ी, सूरत पचाँची ।

पच्छम हिंदो पातशा, लाखो फूलोशी” ॥ १ ॥

( उक्त पत्र से )

इस दानवीर लाखे का जन्म वि० सं० ८१२ श्रावण शुक्ला सप्तमी को “सोनल” राणी के गर्भ से हुआ था । इसका पिता फूल था जो जाम भोड़ का पोता था । इस हिसाब से लाखे ने ८१२ से १०३६ तक अर्थात् १२४ वर्ष की उम्र पाई । संभव है कि इतनी बड़ी उम्र में लाखे जीता रहा हो और युद्ध के योग्य रहा हो । यह बात विचारणीय है । यदि लाखे का वि० सं० १०३६ में मारा जाना ठीक है तो, जैसा कि ऊपर जेहल के पिता भारा का जो समय ( १६४२ से १६८८ ) लिखा है, ( अनुमान से ) जेहल का उसके पीछे, छः सौ से भी बहुत अधिक पीछे, समय आता है । अर्थात् लाखे ११वीं शताब्दी में मरा और जेहल १७वीं शताब्दी में मरा । और अपने पूर्वज लाखे की सी ख्याति अपने दानवीरत्व से पाई । जेहल का अपने पिता के जीवन-काल में मरना प्रसिद्ध है, इससे वह १६८८ के पूर्व ही मरा था । यह निःसंदेह सिद्ध होता है ।

लाखे के जन्म और मरण के संबंध में रासमाला के गुजराती अनुवाद में दीवाणभाई “रणछोड़जी” ने, प्रथम भाग के पृ० ५४ तथा पृ० ८३ फुटनोटो में, यही निष्कर्ष निकाला है जो श्री ओम्भाजी ने “समालोचक” में प्रकाशित किया है ।



अर्थात् लाखा सीयाजी के हाथ से नहीं मारा गया था। उसके समय में और सीयाजी के समय में २५० वर्ष से अधिक का अंतर है। लाखा तो आठकोट की लड़ाई में मूलराज के हाथ से, सन् ईस्वी ६७६ ( संवत् वि० १०३६ ) में, मारा गया। लाखा तो ई० सं० ८५५ में जनमा था और सन् ६७६ में सवा सौ वर्ष १२५ की आयुप्य भोगकर मूलराज के हाथ से ही मारा गया था। सवा सौ वर्ष की आयु का बुढ़ा लाखा युवा अवस्थावाले मूलराज से लड़ा यह भी एक विचित्र ही कथा जानिए। इतने जर्जरीमूत वृद्ध पुरुष को पुरुषार्थी मूलराज ने मारा इसमें उसकी कुछ भी बढ़ाई नहीं है।

निदान ऐसे दानवीर युवराज जेहल ( जेसल-जेठा ) का यश-गान ऐसे महाकवि वाँकीदासजी ने बड़े ओज भरे शब्दों में किया है। इसको ध्यानपूर्वक पढ़ने से भारतवर्ष के कवियों के दान का माहात्म्य, चारण कवियों की दानियों की प्रशंसा करने की शैली, जेहल और उसके पूर्वजों की उदारता का दिग्दर्शन बहुत ही सुंदर रूप में हमारे सम्मुख हो जाता है। इसके कई एक दोहे और आख्यायिका-मय वाक्य बड़े ही महत्त्व के हैं जिनको पढ़कर पाठक आनंद प्राप्त करेंगे। यहाँ विस्तार-मय से उनका लिखा जाना उचित नहीं समझते हैं।

## ( २ ) कायरबावनी

इस ग्रंथ में कविराजाजी ने ५४ दोहों में उन अधम, जातिद्रोही, कुलहीन, नमकहराम, कपटी एवं खुशामदी पुरुषों का वर्णन किया है जो अपने स्वामी की भूठी खुशामद कर-करके अपने पेट की आग को शांत करने में तत्पर रहते हैं, और युद्ध अथवा अन्य विपत्ति के समय सर्वप्रथम दुम दबाकर नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं। ऐसे निर्लज्जों के लिये बाँकीदासजी के बाँके ( तीखे ) बाण वास्तव में बड़े तेज और पैने हैं जिनका वार कभी खाली नहीं जाता और वे सीधे ही हृदय पर जाकर लगते हैं। कविराजाजी ने ऐसी बारीक चोजभरी चुटकियाँ ली हैं जिनको सुन-पढ़कर ऐसे पुरुष अवश्य लज्जित होंगे और अपने कर्तव्य पर पश्चात्ताप करेंगे।

ग्रंथ के आरंभ में ईश्वर-स्तुति करके कायर का लक्षण बताया है

“आग न जागै आँखियाँ, तिणसिर दीर्घाँ तंत ।

पलपल मुख पुलकावणो, कायर ही उचकंत” ॥

आगे कायरो की युद्धादि में अनुपयोगिता और इसी लिये इनका बहिष्कार उपयुक्त समझकर कवि ने कौसा अच्छा कहा है :

“कथं म राखो कटक में, नर कायर निरलज्ज ।

काला बलदां काढ़जै, काँकल जीपण कज्ज” ॥

और कायरो की निरर्थकता कैसे अच्छे शब्दों में बताई है

“लाखों सठ दे लीजिए, पंडित गुण भरपूर ।  
कायर लाखों बेचकर, साहिव ! लोजै सूर” ॥

कहाँ कहाँ उत्तम उपदेश और चोज भरे वचन भी दाँहों में आ गए हैं । यथा

“भेष लियाँ सूँ भगत नँह, ह्वै नँह गह्याँ हूर ।  
पोथी सूँ पंडित नहीं, ससतर सूँ नँह सूर” ॥  
“बादल ज्यूँ सुरधनुष विण, तिलक विना दुजपूत ।  
वनो न सोभै मोड़ विन, धाव विना रजपूत” ॥

कायरो का उपहास भी खूब किया है । यथा

“भागल भारथ भीड़ से, वाणी सह विसरंत ।  
मुख बापूडो मावडो, भाईडो भाखंत” ॥  
“पैलो खोसे पाधडो, हँसे दिखालूँ दंत ।  
कायर मोनै क्योँ कहै, सुद्ध सुभावाँ संत” ॥

‘ भारथ मत कर भाभणी, भो भारथ नँह भेल ।  
वापी कूप बताव विस, कैकर हँहोसूँ कोल’ ॥

इस वाक्यनी में अनेक ठोहे अर्थ-चमत्कार के हैं । यथा

“अदतों केरी अत्थ ज्यूँ कायर री किरमाल ।  
कोड प्रकाराँ कोस सूँ, नँह पावै नीकाल” ॥

नोट यहाँ कोस ( कोश ) शब्द में ज्लेप है सो बड़ी उत्तमता से दोनों ओर अर्थ दता ह ।

“मंजन करै सधीर मनु, सूरों सारों धार ।

कायरडा मंजन करै, आँसू धार मभार” ॥

इसमें भी धार शब्द श्लेषार्थ-युक्त यमक से चमत्कृत है ।

“कायर थाको दौड़कर, ससि सूँ करै पुकार ।

अग ज्यूँ मूझ वसावजै, मंडल तँगै मभार” ॥

नोट इस दोहे की उक्ति में यह चतुराई है कि व्यंग से उस कायर को कलंक बता दिया है । मृग शब्द से दोनों ध्वनियाँ मजकती हैं । एक तो रग से मृग की तरह जल्दी भागना और फिर कलंकी चंद्रमा की शरणा में जाकर खुद उसका कलंक बनने की इच्छा प्रकट करना ।

यह ग्रंथ बाँकीदासजी ने वि० सं० १८७१ की श्रावण शुक्ला द्वितीया को बनाया था, जैसा कि इस दोहे से प्रकट है

“एकोतरै अठारसै, श्रावण दुतियक स्वेत ।

बाँकै ग्रथ बनावियो, कायर जुजस निकेत ॥”

( ३ ) भमाल राधिका सिखनख-वर्णन

यह ग्रंथ राधिकाजी के सिख-नख-वर्णन में है अर्थात् राधिकाजी के मस्तक से लगाकर चरणारविदों के नखों तक का वर्णन बड़ा सुंदरता से अनेक रूपों में अर्थात् अलंकारों से अलंकृत है । एक तो बाँकीदासजी की चोज और चमत्कार भरी उक्ति फिर छंद भी उन्होंने उपयुक्त लिया है

अर्थात् 'भूमाल', जिसमें वर्णन के लिये गुंजायरा और भाव निदर्शन के लिये छंद की ढाल सहायक हुए हैं। कवियों में सिखनख वा नखसिख का वर्णन करना एक उत्तम शैली सी है। संस्कृत के कवियों में भी बहुतों ने नखसिख कहे हैं। इसी तरह भाषा में भी संस्कृत का अनुकरण करके इस चाल को निभाया है, और अनेक कवियों ने इसमें नाम पाया है। उर्दू के कवियों ने भी "सरापा" लिखकर, अपने अपने काव्यों की छटा को बढ़ाया है। डिंगल भाषा में वाँकीदासजी के से नख-सिख बहुत कम हैं। वाँकीदासजी के इस प्रकार की कविता करने से डिंगल साहित्य की शोभा बढ़ी है। कवि ने राधिकाजी का सिख-नख कहकर एक कार्य से दो फल पैदा किए हैं। एक तो श्रीराधिकाजी का सर्वांग ध्यान उनके उपासकों के लिये सर्वांग-सुंदरता से बन गया, दूसरे नायिकाभेद में नायिका के सब अंगों की प्रशंसा अनेक उपमाओं और वर्णनों की विभिन्नता से प्रदर्शित हो गई। यों काव्य का एक अंग मनोहरता के साथ इस साहित्य में उपस्थित हो गया। इस काव्य में अनेक छंद बहुत अच्छे आए हैं, और उनमें अनेक भाव और अनेक वर्णन भी बहुत उत्कृष्ट हैं। ग्रंथ के अंतिम छंदों में युगल स्वरूप का भी वर्णन आया है जो बड़ा सुंदर है, और आशा है कि भक्त पाठकों के मन को आनंद प्रदान करेगा। कवि का वर्णन ऐसा (अनेक छंदों में) पाया जाता है कि उनका हृदय भी प्रेम वा भक्ति

से सराबोर था। सच है विना ऐसे रंग में रंगे ऐसी उक्तियाँ कैसे पैदा हो सकती हैं।

यह ग्रंथ कवि ने 'भूमाल' छंद में लिखा। भूमाल छंद डिंगल भाषा का छंद है। इसका लक्षण मंछ कवि रचित 'रघुनाथ-रूपक' में दिया है वह विस्तार से पुस्तक के अंतिम छंद के नोट में लिखा गया है। स्पष्ट है कि एक दोहा और एक चंद्रायण छंद से यह बनता है। दोहे और चंद्रायण में सिंहावलोकन है, अर्थात् दोहे का अंतिम शब्द चंद्रायण के आदि में भी आता है।

### ( ४ ) सुजसछतीसी

यह ग्रंथ यशस्वी, वीरों और दातारों की प्रशंसा में और कृपणों और अनुदार पुरुषों की निंदा में है। इसमें ३४ दोहे और चार सौरठे हैं। सौरठे संख्या ६, ७, १० और २२ हैं। इसमें कवि ने सुयशवाले पुरुषों की श्लाघा करके अनुदार पुरुषों की निंदा से यह शिक्षा दी है कि सुकृती, परोपकारी, त्यागी, गुणियों के संमान करनेवाले, यश के प्रेमी, अपना नाम स्थिर रखने की इच्छा करनेवाले, जो पुरुष हैं वे ही संसार में मरने पर भी अमर रहते हैं और इनके विरुद्ध स्वभाववाले कायर, कापुरुष, अनुदार, अदातार पुरुष जीते ही मरे बराबर हैं। न वे संसार को चाहते हैं, और न संसार उन्हें चाहता है। अतः सुकृत के लिये ही उत्तेजना

इस छत्तीसी का परम ध्येय है, और यग-प्राप्ति के लिये रोचक वाक्य और अपयज्ञ के त्याग के लिये भयानक वाक्य इस शिक्षाप्रद काव्य से कवि ने बड़ी चातुरी से धरे हैं, जिन्हें समझते ही मन पर बड़ा प्रभाव होता है।

कैसा अच्छा कहा है कि

“पंगी गंग प्रवाह, निरमल तन कीधो नहीं।

चित्त क्यूँ राखै चाह, तिकै सरग पावण तणों” ॥

“कृपणों जस भावै कठै, विधि विमुखों नूँ वेद।

बाँका भोजन नँह रुचै, ज्यारै वप ज्वर खेद” ॥

“आलस वालो मंगणों, उर मंगणों उदार।

बंक उदारों विसव मे, वालो जस विस्तार” ॥

“मच्छोरै जल-जीव जिम, सवजी तराँ सदीव।

अदतारों घन जीव इम, जस दातारों जीव” ॥

बाँकीदासजी का यश की महिमा का निश्चय नीचे के दोहे से कैसा अच्छा प्रकट होता है

“हुवै जेम हर हस सूँ, वासर कमल विकास।

एम धरम जस है उमै, दत सूँ बाँकीदास” ॥

अपने इस ग्रन्थ के वास्तविक उद्देश्य को यो प्रकट किया है

“सुदताँ इणनूँ साँभलै, अमी नजर सूँ ईख।

कृपणारो इणमे कुजस, सुजस छत्तीसी सीख” ॥

कवि ने दृष्टांत के लिये बड़े बड़े दानियों के नाम देकर अपने विषय को प्रकट किया है। यथा श्रीरामचंद्रजी, सिंघ

का ऊनड़, जगदेव परमार, हातिभताई, कच्छभुज का जेहल कुमार और वीर विक्रमादित्य इत्यादि, जिनके नामों से ग्रंथ विभूषित हुआ है। ये लोग जग में प्रातःस्मरणीय हुए हैं वस्तुतः त्यागी का दर्जा ही सबसे ऊपर है और वही अपने त्याग के कारण ही संसार में स्मरण किया जाता है और उसके अनुकरणीय, यशो-धवल सचचरित्र से जगत् में अन्य पुरुष भी वैसे ही होना चाहते हैं।

### ( ५ ) संतोषबावनी

५५ दोहे-सोरठो में संतोष की महिमा और असंतोष और लालच की निंदा वर्णन की गई है। संतोषरूपी सुरतरु का भाहात्म्य भारतीय धर्मों में सर्वत्र गाया गया है। यह संतोष शांत और त्यागी, ब्रह्मनिष्ठ, महान् आत्मा पुरुषों के लिये अमृत समान है इसमें तो कहना ही क्या है, परंतु संसारी स्रग्-निरत पुरुषों की भी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा में वृद्धि करनेवाला गुण होता है। बाँकीदासजी ने इस ग्रंथ के मंगलाचरण में ही वस्तु-निर्देश के साथ भगवान् से प्रार्थना की है सो दोहा बड़ा चमत्कारी है। इस ग्रंथ के कई दोहे बड़े अच्छे हैं, जो संतोष-प्रेमी पुरुषों के याद रखने लायक हैं। यथा

“गर्ह चढियाँ संतोष गज, धर पड ज्याँने धोक ।

चढियाँ ज्याँनू चहरजे, लालच गरदभ लोक” ॥’



“मौल मंगाडे चंद्रमण, दहण सुथंभण दाह ।  
दाह हिए लालव दहण, जतन न थंभण जाह” ॥  
“हेकरती न्ह हालियो, सोनो रावण साथ ।  
लेजावण लोभी करै, आथ साथ असमाथ” ॥  
“ज्यारै खाक विछावणो, ओढणूँ आकास ।  
ब्रह्म पोष संतोष वित, पूरण सुख त्यो पास” ॥  
“सा पुरुषो संतोषियो, खाणोँ जवहर खोँय ।  
बेलोँ चित्राँ बेलडोँ, पारस सयल पखोँय” ॥

यह ग्रथ वाँकीदासजी ने फागुन सुदी १३ सं० १८७८  
वि० में बनाया था । यथा

“अट्टारै सै अठंतरे, भोजी फागण मास ।  
सुद तेरस संतोषगुण, वरणे वाँकीदास” ॥

### ( ६ ) सिधराव-छत्तीसी

इस सिधराव-छत्तीसी में कविराजा वाँकीदासजी ने  
अन्हिलवाडा गुजरात देश के परम प्रतापी राजा “सिद्धराज  
जयसिंह” की शूर-वीरता, विजय, दातारी आदि का यश वर्णन  
किया है । यह छोटा सा ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें  
भारतवर्ष के एक महा साहसी और विजयशाली अधिपति  
को कीर्ति का गान है ।

सिद्धराज जयसिंह राजा “कर्ण” चालुक्य वा सोलंकी का पुत्र था। इनकी वंश-परंपरा और संवत् रासमाला में इस प्रकार दिए हैं

नाम	राज्यारोहण	स्वर्गवास
मूलराज	८८८	१०५३
चामुंडराज	१०५३	१०६६
वल्लभसेन	१०६६	१०६६
दुर्लभसेन	१०६६	१०७८
भीमदेव प्रथम	१०७८	११२८
कर्ण	११२८	११५०
सिद्धराज जयसिंह	११५०	११८६

इस सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् प्रसिद्ध **कुमारपाल** राजा हुआ। “कुमारपालचरित” इसी के नाम पर है जो एक अति प्रसिद्ध महाकाव्य है।

इस सिद्धराज जयसिंह के जन्म के बावत “रासमाला” में इस प्रकार लिखा है “कर्णदेव के पश्चात् गद्दी का वारिस होनेवाला कोई पुत्र नहीं था, इससे वह प्रायः चिंतित रहता था। एक दिन प्रातःकाल कर्णराज दरवार में बैठा हुआ था तब वहाँ एक चित्रकार उपस्थित हुआ। उसने कर्णदेव को कई चित्र दिखाए। उन चित्रों में एक चित्र को जिसमें एक राजा के आगे लक्ष्मी नृत्य कर रही है और राजा के पास में एक षोडशवर्षीया कन्या बैठी हुई है देखकर बड़ा प्रसन्न

हुआ और चित्रकार से पूछा कि यह चित्र किसका है। चित्रकार ने कहा कि दक्षिण में चद्रपुर एक नगर है। वहाँ का राजा जयकेशी है। यह कन्या उसी की पुत्री है। इसका नाम "मीनलदेवी" है। अनेक राजकुमारों ने इससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की, किंतु यह कहती है कि जो मुझसे रूप और गुण में अधिक होगा उससे मैं विवाह करूँगी। इसके लिये कई मनुष्यों ने यत्न किए किंतु सफलता प्राप्त नहीं हुई। एक दिन किसी चित्रकार ने आपकी छवि इसे दिखाई, जिसे देखकर यह मोहित हो गई। अपने माता-पिता से कहा कि मेरा विवाह कर्णराज के साथ कर दो। वह आपके विरह में बहुत दुखी हो रही है। उसने मुझे आपके पास गुप्त रूप से भेजा है और जयकेशी की भी इसमें संमति है। यह कहकर उस चित्रकार ने स्वर्ण, रत्न तथा और वस्तुएँ जो जयकेशी ने दी थीं कर्णदेव के आगे रखीं। राजा कर्ण ने उन्हें स्वीकार कर लिया। इसके बाद तुरंत ही मीनलदेवी को व्याहने के लिये अन्हलवाडे गए। वहाँ विवाह हो गया। राजा ने उसे पट्टमहिषी स्थापित की। किंतु किसी कारणवश कर्णदेव उसके महलों में नहीं गए। इससे उसे बहुत दुःख हुआ। कुछ समय बाद राजा एक नटी पर मोहित हो गया। राजा ने उससे एकांत में मिलने का वादा कर लिया। यह बात राजा की माता और भत्री मुंजल को ज्ञात हुई, तो उन्होंने कपट से नटी के स्थान पर

मीनलदेवी को वहाँ भेज दिया। वहाँ से राणी सगर्भा लौटी और लौटते समय युक्ति से राजा से राज-मुद्रा ले आई। राजा को कुछ भी हाल मालूम नहीं हुआ। अंत में इसका राजा ने पश्चात्ताप बहुत किया, और प्रायश्चित्त करने को सात तप्त पुत्तलियों से आलिंगन करना चाहा किंतु प्रधान के भेद खेलने पर राजा को शांति मिली। इस गर्भ से प्रतापी सिद्धराज जयसिंह का जन्म हुआ।”

कुछ वर्षों के बाद राजा कर्ण का स्वर्गवास हो गया। इस समय सिद्धराज बहुत छोटा था। राज्य का कार्य कर्ण की माता “उदयमती” के भाई मदनपाल के हाथ में चला गया। यह बड़ा दुष्ट था। अतः “सीतू” नामक प्रधान ने बालक राजा को वश में करके मदनपाल को उसी के आदमियों द्वारा मरवा दिया। इसके बाद सब राजसत्ता मीनलदेवी के हाथ में आ गई। मदनपाल के समय में सिद्धराज ने समुद्र तक त्रिभुवनपाल की सहायता से जो कर्ण के भाई क्षेमराज का पौत्र था विजय प्राप्त की। अपनी माता के साथ सोमेश्वर की यात्रा करने को कुछ वर्षों पीछे गया तो पीछे से मालवे के राजा यशोवर्मा ने इसके राज्य पर चढ़ाई की। लौटने पर एक तालाब ( जिसका नाम सहस्रलिंग था ) का काम पूर्ण कराके इसने थोड़े समय पीछे यशोवर्मा पर चढ़ाई की और उसको बंदी करके ले आया। यह लड़ाई बारह वर्ष तक चली थी, जिसके अंत में यह विजय प्राप्त

हुई थी। सिद्धराज ने एक यह काम बड़ा पुण्य का किया था कि जो लुटेरे यात्रियों को लूट लिया करते थे उन सबको मारकर साफ कर, यात्रियों का दुःख निवारण कर दिया। और भी अनेक पुण्य-कार्य इसने किए। भूलराज के बनाए पुराने जीर्ण शिवालयों, रुद्र महाकाल आदि के मंदिरों के जीर्णोद्धार किए और रुद्र महाकाल के पुजारियों को कष्ट देनेवाले बर्बर लोगों को जीतकर अपने वश में किया। इसके पश्चात् सोरठ जूनागढ़ के राजा 'खेंगार' को युद्ध में मारा; क्योंकि इसने किसी कुम्हार के घर पाली हुई 'राणकदेवी' नामक कन्या से जबरदस्ती विवाह कर लिया था। इस राणकदेवी का विवाह सिद्धराज जयसिंह से होनेवाला था। सिद्धराज जयसिंह ने सोरठ, कच्छ उत्तर में अचलेश्वर, चंद्रावती से आवू तक पूर्व में मालवा और दक्षिण में यहाँ तक विजय प्राप्त कर अपनी अधीनता में स्थापित कर दी थी कि कोल्हापुर का राज्य भी उससे भयभीत रहने लगा।

सिद्धराज की माता भी बड़ी धर्मात्मा थी। पुत्र भी वैसा ही पुण्यात्मा था। बड़े बड़े धर्म और पुण्य के काम किए। अनेक कुएँ, बावड़ी, तालाव, मंदिर बनाए। ब्राह्मणों की बहुत रक्षा की और दानादि भी दिए। इससे इसकी बहुत ही प्रशस्ति हुई। "मानसरोवर" तालाव, जिसका नामोल्लेख इस ग्रंथ के मंगलाचरण में आया है, इसकी माता का बनाया हुआ है।

चौहाँण पृथीराज द्वितीय का उत्तराधिकारी सोमेश्वर सिद्धराज जयसिंह का देहिता था क्योंकि सिद्धराज की पुत्री काचनदेवी अणोराज को व्याही थी और उसने अपने नाना सिद्धराज ही से शिक्षा पाई थी ।

( भारत के प्राचीन राजवंश रेक का १ भाग, पृ० २४६ तथा पृ० २४० )

रासमाला गुजराती ( पृ० १५४ ) में लिखा है कि सिद्धराज जयसिंह ने महाराष्ट्र, तिलंग, करणाटक, पाड्य आदि राज्य अपने वश में किए थे । इन विजयों के विषय में आगे चलकर म० म० ओम्ना श्री गौरीशंकरजी की तहकीकात का सार, उनके प्रकाशित कराए हुए निबंध "सिद्धराज जयसिंह" पर से खींचकर पाठकों के विनोदार्थ हम देते हैं । उससे उस पराक्रमी राजा के संबंध में अनेक आवश्यक और उत्तम बातें ज्ञात हो जायँगी । जिनको विस्तार से जानना हो वे उक्त पुस्तक को वा फार्वस साहिव की रासमाला वा गुजरात के अन्य इतिहास अवलोकन करने का श्रम उठावें ।

सिद्धराज जयसिंह के संबंध में ओम्ना गौरीशंकरजी से हमने पूछा तो उन्होंने कृपा करके अपनी रची हुई पुस्तिका "( १ ) सोलंकी राजा जयसिंह ( सिद्धराज )" भेजी, जो "नागरीप्रचारिणी पत्रिका" में भी उन्होंने प्रकाशित कराई थी । इस लेख में प्रसिद्ध ओम्नाजी ने बड़ी तलाश और हँड़ से सिद्धराज का वृत्तांत लिखा है । इससे बड़ी ही सहायता

मिली और बहुत से भ्रम निवारण हो गए तदर्थ हम उनके बहुत ही कृपज्ञ होते हैं। उपरोक्त हमारे लेख और इस पुस्तिका को मिलाकर, वाँकीदासजी के "सिद्धरावछतीसी" के अंदर आई हुई बातों के अभिप्राय जो स्पष्ट करनेवाली वा बताने में सहायक बातों को भी हम यहाँ उल्लिखित कर देते हैं (१) जयसिंह ( सिद्धराज ) के विरुद्ध ( वा उपनाम गुणप्रकाशक अभिधेय ) ये हैं 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परमभट्टारक', 'त्रिभुवनगड', 'वरवरकजिष्णु', 'अवंतीनाथ', 'सिद्धचक्रवर्ती' और 'सिद्धराज'। ( २ ) जयसिंह तीन वर्ष का था तभी उसका पिता कर्णदेव मर गया था। इस हिसाब से जयसिंह का जन्म-संवत् विक्रमी ११४७ होता है, क्योंकि जयसिंह का राज्य पाना सं० ११५० का लिखा है। ( ३ ) जयसिंह ने धारानगरी ( उज्जैन ) के परमार राजा यशोवर्मा को विजय कर अपने यहाँ कैद रखा और यह कुछ १२ वर्ष रहा सो नरवर्मा के समय में तो प्रारंभ हुआ और यशोवर्मा के समय में अंत हुआ। ( ४ ) फिर भालत्रे का कुछ राज्य सिद्धराज ने यशोवर्मा को लौटा दिया। ( ५ ) जयसिंह सिद्धराज ने भालवे की लड़ाई में वीरता दिखानेवाले शूरवीरों को बहुत सा पुरस्कार दिया और उनमें सर्वश्रेष्ठ वीर 'नाडोल' के चौहान राजा आसाराज को स्वर्ण का कलश प्रदान किया था। ( ६ ) सिद्धराज का, इस विजय से ही, चित्तौड़ के किले तथा निकट प्रदेशों पर भी अधिकार हो

गया था। ( ७ ) मालवा-विजय का संवत् ११८१ और ११८५ के बीच का प्रतीत होता है। ( ८ ) अणोरिज ( अजमेरवाले चौहान ) से युद्ध करने में जब सुलह हुई तब सिद्धराज ने अपनी पुत्री काचनदेवी को उसे व्याह दिया जिससे सोमेश्वर पैदा हुआ। ( ९ ) सिंध देश के प्रतापी राजा को सिद्धराज जीतकर बाँध लाया था। ( १० ) महोबे के राजा 'मदनपाल' पर सिद्धराज ने चढ़ाई की थी। ( ११ ) सिद्धराज ने बरबरक\* को जीता था। ( १२ ) 'सिद्धराज' नाम इसलिये प्रसिद्ध हुआ कि उसने श्मशान में बैठकर मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी और उसके बल से हर एक बात में सफलता प्राप्त कर लेता था। इससे यह जादूगर भी मशहूर हो गया था। इस संबंध में (कुमारपाल-प्रबंध के अनुसार) एक रोचक कथा है "जयसिंह का सिद्ध-चक्रवर्ती खिताब होना सुनकर हिमालय से उसकी सिद्धि की जाँच करने की इच्छा से योगिनियों उसकी सभा में आईं और उससे बोलीं कि हम तुम्हारी सिद्धियाँ देखने आई हैं। यह सुनकर राजा ने पहिले उनका आतिथ्य किया फिर एक दिन उनके समक्ष चमत्कार दिखलाने की इच्छा से वह एक चमकती हुई तलवार को मूँठ पर्यंत खा गया। वह तलवार बड़ी चतुराई से खाँड़ ( शककर ) की बनाई हुई थी, केवल उसकी मूँठ लोहे

\* बरबरक- अरब देश के जगली म्लेच्छों का राजा। "बाबर भाड" शब्द यहीं से चला है।



की थी। इसके पीछे उसके मंत्री सांतू ने योगिनियों को बची हुई तलवार और मूठ खाने को कहा। परंतु उनसे कब खाई जा सकती थी ? इसलिये उन्होंने कहा कि राजेंद्र ! आप अपूर्व शक्ति को धारण करनेवाले हैं और 'सिद्धचक्रवर्ती' कहलाए जाने के सर्वथा योग्य हैं ।”

( सिद्धराज ) जयसिंह के अनेक चमत्कार देखकर अज्ञान लोगों ने ही उसके वश में भूतों का आना मान लिया हो ऐसा नहीं है, किंतु कई विद्वान् लेखकों ने भी इसको सच माना है ऐसा पाया जाता है १. सोमेश्वर 'कीर्तिकौमुदी' में लिखता है कि जयसिंह भूतों के स्वामी वरवरक को अधीन कर सिद्धराज कहलाया। २. अरिसिंह 'सुकृत-संकीर्तन' में लिखता है कि जयसिंह वरवरक के कंधे पर बैठकर आकाश से फिरता था। ३. हेमचंद्र आदिकों ने भी उसकी सिद्धियों को माना है, यथा “द्वयाश्रयकाव्य” में आया है कि रत्नचूड़ नाग के पुत्र कनकचूड़ के सहायतार्थ जयसिंह ने वज्रमुख जाति की मन्त्रियों से भरे अंधेरे कुएँ में (जिसमें प्रवेश से मृत्यु हो जाती थी) प्रवेश कर कुएँ की खारी मिट्टी लाकर दी थी। (१३) जयसिंह ( सिद्धराज ) ने दक्षिण में कल्याण के सोलंकी राजा 'परमर्द्धि' ( विक्रमादित्य छठा ) पर ( उससे लड़कर ) विजय पाई थी। ( १४ ) 'कीर्तिकौमुदी' में सिद्धराज का गौड़ देश पर चढ़ना भी लिखा है। ( १५ ) जयसिंह सिद्धराज की उदारता, - धर्म-

परायणता, पराक्रम आदि गुणों के कारण उसकी प्रजा उसको बहुत चाहती थी और उसका गुजरात आदि देशों में सिधरा ऐसा अध्यापि नाम प्रसिद्ध है। (१६) वह कट्टर शैव था, तो भी वह दूसरे धर्मों की ओर उदारता दिखाता और उनका आदर रखता था। लाखों रुपए देकर अनेक जैन-मंदिर बनवा दिए। (१७) सिद्धराज रात्रि को धूम-फिरकर लोगों की सच्ची दशा जाना करता था, फिर उनको बुलाकर उनके सुख-दुःख के सारे हालात कह देता था। इन बातों से भी लोगों को विश्वास हो गया था कि वह किसी देवता का अवतार है।

(१८) फारसी पुस्तक 'जामे-उल-हिक्कायात' में लिखा है कि खंभात नगर में अग्निपूजकों ने सुन्नी मुसलमानों की मसजिद जला दी। उसका भगड़ा होने पर ८० मुसलमान मारे गए। उसकी फर्याद जयसिंह के पास पहुँचने पर वह गुप्त रूप से खंभात पहुँचा और वहाँ सब सच्ची बातें जानकर लौटा। और तहकीकात करके अग्निपूजकों को दंड दिया।

(१९) जयसिंह विद्याप्रेमी और गुणप्राही था। उसके समय में अनेक नामी नामी विद्वान् हुए और उन्होंने ग्रंथ लिखे। यथा हेमचंद्र सूरि ने बहुत से ग्रंथ रचे और उनमें से एक का काम सिद्धराज की यादगार में "सिद्ध हैम व्याकरण" रखा था। [ नोट हेमचंद्र के ग्रंथों की सूची विद्वानों को ज्ञात ही है। और रासमाला (गुजराती) में भी सूची दी है। वहाँ देखें ] श्रीपाल नाम पंडित ने, जो जयसिंह

सिद्धराज का दरवारी कवि था, 'वीरोचन पराजय' बनाया, तथा दुर्लभराज ने मेरु प्रशस्ति, वडनगर की प्रशस्ति, सहल्लिंग की प्रशस्ति बनाई। वाग्भट्ट ने 'वाग्भट्टालकार'। जयमंगलाचार्य ने 'जयमंगला शिचा'। गोविंदसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्न-महोदधि'। सागरचंद्र ने सिद्धराज की प्रशंसा में एक काव्य लिखा था। ( २० ) सिद्धराज जयसिंह विद्वानों की समा कराता और उनके द्वारा धर्म सुनता और मित्र मित्र मत्तावलंबियों में परस्पर शालार्थ भी करवाता था।

( २१ ) जयसिंह ने कितने ही पुण्य के कार्य किए हैं। इसने अनहिलवाड़े में कीर्तिस्तंभ, सहल्लिंग सरोवर, सत्र-गाला मठ तथा दशावतार का मंदिर बनवाया। सिद्धपुर में रुद्रमहालय ( रुद्रमहाकाल ) का मंदिर तथा एक जिन-मंदिर भी बनवाया। उज्जयंत पर्वत पर नेमीश्वर के लकड़ी के बने हुए मंदिर के स्थान पर सौरठ देश के तीन वर्ष की आय से पाषाण का मंदिर बनवाया।

( २२ ) जयसिंह सिद्धराज के समय में 'अवू अण्डुएला महमूद' ने जो 'अल-इंद्रसी' नाम से प्रसिद्ध था 'नजहतुल्ल मुश्ताक' नामक भूगोल-संबंधी पुस्तक फारसी भाषा में लिखी। उसमें वह अनहिलवाड़े के विषय में लिखता है 'नहरवाले का स्वामी बड़ा राजा है उसे 'वलहरा' कहते हैं। उसके पास बड़ी सेना और हाथी हैं। वह बुद्ध की मूर्ति को पूजता और सिर पर सोने का मुकुट धारण करता है। वह बहुधा घोड़े

पर सवार होता और एक बार बाहर जरूर जाता है। उसकी भरदली में १०० औरतें रहती हैं, जिनकी पोशाक कीमती, हाथ-पैर में सोने-चाँदी के कड़े और केश घुँधराले होते हैं। यह औरतें राजा के सामने कई प्रकार के खेल करती और कृत्रिम लड़ाई लड़ती चलती हैं। मंत्री तथा सेनापति केवल उसी समय राजा के साथ रहते हैं जब वह किसी बागी से लड़ने जाता या अपने राज्य पर आक्रमण करनेवाले पड़ोसी राजा को भगाने के लिये चढ़ाई करता है।...नहरवाले व्यापारियों का रक्षण और सम्मान करते हैं और चावल, दाल, सेम की फली, भास, मछली या मरे हुए जानवर खाते हैं और किसी पशु-पक्षी या जानवरों को मारते नहीं हैं। ( नोट 'नहरवाला' शब्द "अनहलवाड़ा का अपभ्रंश रूप है। और 'बलहरा' शब्द "वल्लभराज" का अष्ट रूप है जो शब्द राठोड़ों के लिये मुसलमान ऐतिहासिक पुरुषों ने प्रयुक्त किया, और फिर यही शब्द बलवान् और प्रतापी राजा के साथ प्रायः लोगों ने लगाया। ), ( २३ ) सिद्धराज जयसिंह को अनेक उपाय, दान-पुण्य, अनुष्ठान, साधन करने पर भी कोई पुत्र नहीं हुआ। प्रत्युत शिव की, ध्यान में, उसको यह आज्ञा हुई कि उसके पुत्र नहीं होगा। अपितु उसके पीछे उसके चचेरे भाई कुमारपाल को राज्य मिलना बदा है। इस पर उसने कुमारपाल के पिता क्षेत्रपाल की मार डाला तब कुमारपाल प्राण बचाकर भागा और उसके ( सिद्धराज के )

मरने पर कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी हो गया । ( २४ ) 'प्रबंध-चिंतामणि' ग्रंथ में सिद्धराज का मरना वि० सं० ११६६ की मिवी कातिक सुदी ३ का लिखा है ।

( २४ ) सिद्धराज जयसिंह का वृत्तांत नीचे लिखे ग्रंथों में उल्लिखित है ( क ) हेमचंद्र का 'द्वयाश्रय महाकाव्य' । ( ख ) जिन मंडन कवि का 'कुमारपाल-प्रबंध' । ( ग ) जयसिंह सूरि ( वा चारित्र सुंदर गण्ण ) का 'कुमारपाल-चरित्र' । ( घ ) सोमेश्वर के 'कीर्त्ति-कौमुदी' और 'सुरघोषसव' । ( ङ ) अरि-सिंह कृत 'सुकृत-सकीर्तन' । ( च ) मैरुपुंग-रचित 'प्रबंध-चिंतामणि' । ( छ ) राजशेखर सूरि रचित 'चतुर्विंशति-प्रबंध' । ( ज ) फार्वस साहित्य का रचा 'रासमाला' तथा उसका गुजराती अनुवाद । ( झ ) गुजरात का इतिहास । ( ञ ) इलियट डायसन साहित्य की भारत की हिस्ट्री । ( ट ) दो फारसी पुस्तकों का ऊपर उल्लेख हो ही चुका है । ( ठ ) भाट चारणों की ख्याते और छंद रचनाएँ । ( ड ) इनके अतिरिक्त गुजराती रासमाला में 'पट्टावली', 'अर्ली गुजरात' ( Early Gujrat ) आदि और ( ढ ) 'सोमप्रभ सूरि रचित 'कुमारपाल-प्रतिबोध' भी । अनेक ग्रंथों के प्रमाण पादटीपों में दिए हैं जिनके नामों को लिखना यहाँ अनावश्यक प्रतीत होता है ।

सिद्धराज जयसिंह के समय के अब तक चार शिलालेख मिले हैं ( १ ) भद्रावती का वि० सं० ११६३ का मि० आषाढ़ सुदी १० का ।

( २ ) उज्जैन से प्राप्त वि० सं० ११-६५, जेठ कृष्णा १४ का ।

( ३ ) दोहद गाँव से प्राप्त वि० सं० ११-६६ का ।

( ४ ) तलवाडा गाँव ( ३० बाँसवाड़ा ) का गणेश की मूर्ति के नीचे खुदा हुआ संवत् पढ़ा नहीं जाता है ।

गुजराती रासमाला ( चतुर्थ संस्करण, पृ० ४३ ) में लिखा है कि "मूलराज के क्रमानुयायी जितने राजा हुए उनकी टोप एक ताम्रपट के ऊपर है जो अहमदाबाद के भंडार में जड़ा हुआ है और यह १२६६ का है ।" इसमें संस्कृत में मूलराज, चामुंडराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, कर्ण-देव, जयसिंह सिद्धराज, कुमारपाल, अजयपाल, मूलराज दूसरा, भीमदेव, त्रिभुवनपाल पर संस्कृत पक्तियाँ हैं जिनमें इन राजाओं के विरुद्ध वा उपनाम वा गुणप्रकाशक विशेषण हैं । इसमें सिद्धराज जयसिंह के संबंध की यह पक्ति है

"पादानुभ्यात - परमेश्वर-परमभट्टारक - महाराजाधिराज-अवंतीनाथ-त्रिभुवनगंड - बरवरकजिष्णु - सिद्धचक्रवर्ति-श्री जयसिंहदेव" ।

यह पंक्ति ही उपरोक्त ओझाजी के लिखे सिद्धराज की उपाधियों का आधार प्रतीत होती है ।

सिद्धराज जयसिंह की विजयों के संबंध का एक श्लोक

"कुमारपालचरित्र" के सर्ग १ के वर्ग २ में यह है

"कर्णाट-लाट-मगधांग-कलिंग-वंग-

काश्मीर-कीर-मरु-मालव-सिंधुगुल्यान् ।

देशान् विजित्य तरणिप्रमितैः सवर्षैः

सिद्धाधिपो निजपुरं पुनराससाद" ॥ ३८ ॥

अर्थ करणाटक देश, लाट देश, मगध ( विहार ) देश, अंग देश ( उड़ीसा ), कलिंग देश, बंग ( बंगाल ) देश, कश्मीर देश, कीर देश, मरु देश ( मारवाड़ आदि ), मालव देश ( मालवा ), सिंधु देश ( सिंध ) आदि को १२ वर्ष में जीतकर सिद्धराज ( जयसिंह ) अपने नगर (अन्हिलवाड़े पाटण) को लौटा ।

परंतु इसको ओम्भाजी ने अत्युक्ति बताई है और कल्पना मात्र ही ठानी है, क्योंकि जयसिंह को बारह वर्ष तक मालवा जीतने में ही लगे थे । संभव है कि कवि ने सिद्धराज की विजयों की परिगणना ही की हो, कुछ बारह वर्ष पर्यंत मालवे से लड़ने को न कहा हो ।

“चतुर्विंशति-प्रबंध” राजशेखर सूरि के रचे में ‘मदन-वर्म-प्रबंध’ में लिखा है कि सिद्धराज ने महाराष्ट्र, तिलंग, करणाटक, पांड्य, आदि राज्य अपने वश में किए थे, जैसा कि हमने ऊपर दर्साया है ।

इन विजयों का संकेत वॉकीदासजी ने कई छंदों में किया है, यथा

(१) छंद ८ में कोकन सिरया कटक ।

„ ९ „ दे कोकन तज दाप ।

„ १२ „ सात देश कोकन लिया ।

(२) छंद १० मे गाजे जादव देवगिर लीधो करन सुजाव ।

” ११ ” गूपत जादव भाँण । गांजे तू सो देवगिर ।

(३) ” १३ में ले लच्छी मरहट्ट री ।

” १४ ” मरहट्टी गहिलाव । कुच आधा...।

(४) ” १५ ” द्रविड कियो दहबाट तैं ।

(५) ” १६ ” प्रांध्र करे दहवट्ट ।

(६) ” १७ ” लांठै लूटलियांह, कांठै नदी कवेरजा ।

( नोट यह केरल और पांड्य देशों की बात है )

(७) छंद २१ मे अडर मलयगिर आवियो ।

( नोट यह दक्षिण देश के देशो की बात है जहाँ चदन के वृक्ष बहुत हैं । )

(८) छंद २७ मे सेखसैण आगे अरज केरलनाथ करंत ।

(९) ” ३१ ” राजा सिंधलदीपरेतानूं दीध त्रसींग ।

(१०) ” ३२ ” सिंधल सिंध जियाह ।

(११) ” ३३, ३४ में भीमा, धुनी पयस्विनी गोदावरी गहीर । इत्यादि ।

( नोट इन दक्षिण की नदियों के नामो से उनके बीच वा पास के प्रांध्र, महाराष्ट्र, कोळ, केरल आदि देशो के विजय की बात प्रकट होती है । )

(१२) छंद ३७ में जीतो तू जैसिंगदे दिवणातयां सौ देश ।



उपरोक्त प्रमाणादि से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वाँकीदासजी का यह ग्रंथ, ऐतिहासिक और वास्तविक घटनाओं के आधार पर भारतवर्ष के एक परम पराक्रमी, बुद्धिमान्, धर्मज्ञ राजा का वृत्तांत रूप है, और जो कुछ प्रशंसा उसकी कवि ने की है उसमें कोई ऐसी अत्युक्ति वा कल्पना नहीं है जो इतिहास के ग्रंथों वा आधारों से विरुद्ध हो। भारतवर्ष के इतिहास में सिद्धराज, भूलराज, कुमारपाल आदि सोलंकी राजा "त्रिविधवीर" ( सूरवीर वा युद्धवीर, दानवीर और धर्मवीर ) हुए हैं, और उनकी कीर्ति उनके उच्च गुणों की सच्ची कौमुदी है। इस प्रामाण्यता को देखते हुए महाकवि वाँकीदासजी का यह डिंगल भाषा ही में नहीं भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक बहुमूल्य रत्न कहा जाने के योग्य है, और इससे कवि की जानकारी, इतिहासज्ञता और वीरभक्ति का पूर्ण परिचय होता है। अतः वाँकीदासजी के ग्रंथों का प्रकाशन निष्फल नहीं है, अपितु परम लाभदायक और आवश्यक है। इस प्रकार इन अमितगुणपूरित ग्रंथों की रक्षा और प्रचार हेतु में कुछ हानि नहीं है। और इस ग्रंथमाला के संस्थापक और प्रचालकों का परिश्रम, द्रव्य और कार्य निरर्थक नहीं हुआ है।

### ( ७ ) वचनविवेकपच्चीसी

इस ग्रंथ में २८ दोहों में वाँकीदासजी ने अशुभ, अश्लील और असभ्य वाणी की निंदा और शुभ, सभ्य और मिष्ट

वाणी की प्रशंसा की है और इन दोनों के व्यवहार करनेवालों के हानि-लाभ और गुणावगुण वर्णन किए हैं।  
यथा

“जीकारो अमृत ज्युहीं, भावै जगनूं भाल ।

है रैकारो आक पय, गरल बराबर गाल” ॥

“बाँका विषफल नीपजै, ज्यूं विष तररी डाल ।

यूँ दुरजगरी जीभडी, रैकारो कै गाल” ॥

इसी तरह के कई छंद इस ग्रंथ में बहुत ही अच्छे हैं ।

देखिए यह दोहा क्या ही अच्छा कहा है

“पारख कीधी पंडिता, सब मिले संताह ।

व्यारै जीभ भलाइयाँ, त्यारै भाग भलांह” ॥

और भी देखिए

“सज्जन बाँधै पाळ सिर, सीसां छकियां गाल ।

दुरजन फौडै गाल दे, प्रीत सरोवर पाल” ॥

अर्थात् जिस प्रेम के सरोवर को सज्जन अपना सर्वस्व लगाकर भी बाँध देते हैं जैसे सीसा-गाल-तली का तालाब टूट होता है वैसे ही उनका प्रेम-सरोवर टूट होता है । परंतु उसको भी दुष्ट लोग एक गाली से फोड़ देते हैं ।

यहाँ पाल और गाल शब्दों में श्लेष स्पष्ट है ।

नीचे लिखी लोकोक्तियाँ तत्तत् दोहों में मनोरंजनकारी भासित होती हैं । शिचा के वाक्यों में इस प्रकार की लोकोक्तियों के आने की शैली उनके प्रभाव और बल को बढ़ा

देती है। यह कवि के लोकानुभव, साहित्यानुभव और भाषा की जानकारी का प्रमाण है। वीरकीदासजी बहुत ही अनुभवी पुरुष थे। अनेक गानों का गहन अभ्यास किया था। कई भाषाएँ जानते थे और संसार की देख-भाल तथा प्रकृति का पर्यवेक्षण करने में विलक्षण बुद्धि और योग्यता रखते थे। फिर, निज अनुभव से नीति और उपदेश को ऐसी स्पष्ट कविता में भर देते थे कि जिमसे पढ़ने-सुननेवाले को सुगमता से उसका लाभ हो जाय।

(१) “जग में नर हलका जिकै, वंलै हलका बोल” ।

(२) “पैड पैड त्याँरा पिसँण, ज्याँरा कड़वा वैण” ।

(३) “यूँ डुरजणरी जीभड़ी, दैकारो कै गाल” ।

(४) “गरल वरावर गाल” ।

(५) “गाल न ऊठै गूमड़ी” ।

(६) “गाल लुगायों गावही, नरमुख उचत न गाल” ।

(७) “करणधाव पर-कालजे जीभ प्रतख जम-दाढ़” ।

(८) “जीकारो दो जगत नूँ, रैकारो मत राख” ।

(९) “वाँका मीठे बोलणैँ, नाणों खरच न होय” ।

(१०) “ज्यारि जीभ भलाइयाँ, त्याँरि भाग भलाहँ” ।

(११) “कुवचन मुख कहणों नँही, सुवचन कहणों सुद्ध ।”

इस प्रकार और भी उक्तियाँ हैं, परंतु विस्तार अनावश्यक है।

## ( ८ ) कृपणपञ्चीसी

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, यह ग्रंथ कृपण ( अदा-  
तार, कंजूस, सूम, धनलोभी ) की निंदा में है। “बाँकी-  
दास-ग्रंथावली” के दूसरे भाग में “कृपणदर्पण” ग्रंथ आया  
है। उसी के जोड़े वा विषय का यह भी है। इसमें  
और उसमें कुछ भिन्नता भी है, कुछ साम्य भी। प्रश्न  
यह होता है कि यदि कृपण-दर्पण पहिले बन गया था तो  
इसकी रचना की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर यह  
हो सकता है कि कवि ने उसको अलम् नहीं समझा  
अथवा किसी अन्य स्थल वा अवसर पर इसके छंदों की  
रचना कर डाली। यह भी संभव है कि यह कवि ने  
किसी प्रयोजन वा आवश्यकता से संग्रह कर दिया हो। यह  
भी असंभव नहीं है कि बाँकीदासजी की सहायता से उनके  
किसी आता या शिष्य ने रच दिया या संग्रह कर दिया हो।  
क्योंकि इसमें स्वतंत्र कविता के साथ ही अन्य कवियों  
( ईसरदासजी आदि ) के वाक्य भी हैं। यथा

“अंगण संगण आवियाँ उत्तर बेगो अप्प ।

ऐज महाध्रम आतमा ऐ तीरथ ऐ तप्प” ॥

१३ । कृपणपञ्चीसी ।

“रहो बीन रे रामरस अनरथ धणों अलंत ।

यहिज है ध्रम आतमा ऐतीरथ औ तंत” ॥

१६ । कृपणपञ्चीसी

“रहै वलुंभयो रामरस अनरस गणै अलप्प ।

एह महाग्रम आतमा ऐ तीरथ औ तप्प” ॥

३१। हरिरस ईसरदास कृत ।

‘दरव किसी उपमा दियाँ तोसूँ है सहकोय ।

तो सारीखो तुहिज तूँ अवर न दूजो कोय” ॥

१४। कृपणपच्चीसी ।

“देव किसी उपमा दिवाँ ते सरज्या सह कोय ।

तूभ सरीखो तुहिज तू अवर न दूजो कोय” ॥

१४। हरिरस ।

“सोना हंदा लंक सुण जग तरसे सहजीव ।

जगतपंथ कोथन गिणै गत थारी हयथीव” ।

१५। कृपणपच्चीसी ।

“क्रम अकरम विकरन करै तेजगवीया जीव ।

जगपति को जाणै नहो गत थारी हयथीव” ॥

११। हरिरस ।

“करुँ अरज कमलालया त्यागो वार न लुज्ज ।

जिण दिन ओ जग छाडस्यां तिण दिन तोसू कज्ज” ॥

१६। कृपणपच्चीसी ।

“नारायण हूँतो न भू डण कारण हरि आज ।

जिण दिन आजग छंडयो तिण दिन तोसूँ काज” ॥

१६। हरिरस ।

दोहा १६ प्रवतारचरित्र के दोहे की छाया है और २१वाँ पीपाजी की वाणी का है ।

इस प्रकार बाँकीदासजी ने महात्मा ईश्वरदासजी के हरिरस का भी अनुकरण ही किया है । परंतु उन उच्च कोटि के भक्ति भरे वाक्यों की झलक इस सूम-सक्कड़ी कविता में लाना भी क्या औचित्य का आदर पा सकता है । अस्तु । फिर भी इस ग्रंथ के दोहे “कृपणदर्पण” के दोहे से नए और चुटीले भावों के हैं और कवि ने प्रयोजन ही से पृथक् ग्रंथ का निर्माण किया है । संपादको को इस ग्रंथ की दो प्रतियाँ मिली थीं (१) कविया मुरारिदानजी अयाचक जयपुरवालों की, (२) दूसरी जांधपुर के सीतारामजी लालस की भेजी । इस दूसरी प्रति में अशुद्धियाँ मिलीं । उनको प्रथम से मिलाकर तथा संपादको ने अपनी बुद्धिमानी तथा कविवर हिंगलजदानजी की सहायता से यथासंभव शुद्ध किया है । पाठांतर भी यथास्थान दिए हैं । दोहा सं० १, ३, ७, ११, १७, २६ और २८ ऐसे हैं जिनके सशोधन में विशेष ऊहापोह करनी पड़ी है । कोई कोई दोहा ऐसा भी है कि मानो किसी अन्य की रचना हो । परंतु यह सारी कठिनाइयाँ उस समय मिटेगी जब बाँकीदासजी के-धर में की प्रति निकल आवेगी ।

( ८ ) हमरोटछतीसी

इस “हमरोटछतीसी” में “उमरकोट” की संचित्त हकीकत, प्रशंसा और तवारीखी बात है और वहाँ के जल-

वायु, मनुष्यों और स्त्रियों की प्रशंसा है। ज्ञात ऐसा होता है कि वाँकीदासजी उमरकोट गए हैं क्योंकि कई बातें आखों देखी-सी वर्णित हैं। हमरोट = हमीरकोट। हमीर को उमर भी कहते हैं। अतः उमरकोट = हमीरकोट = हमरोट। अर्थात् हमीरकोट का हमरोट अपभ्रंश रूप है। यह उमरकोट ( जिसको कहीं कहीं अमीरकोट भी अँगरेजी पुस्तकों में लिखा है ) इस समय सिंध सूबे के थरपैकर जिले का एक प्रधान नगर है। पुराने समय में सिंध की राजधानी टट्टा (या तत्ता) था। इस समय सिंध में कराची शहर सबसे बड़ा है और कलकटरेट का स्थान है। उमरकोट आजकल के भौगोलिक नक्शों में नहीं दिखाया जाता है परंतु ऐतिहासिक वा प्राचीन संस्थिति के नक्शों में दिखाया जाता है। अब इसकी आबादी करीब ५००० मनुष्यों के रह गई है। किसी जमाने में खूब वस्ती का था। यह नगर २५ कला २१ अंश उत्तर-अक्षांश और ६६ कला ४६ अंश पूर्वदेशांतर पर स्थित है। कोई कोई इसको अमरकोट लिखते हैं सो गलत है। हमरोट शब्द भी डिंगल का रूपांतर मात्र ही प्रतीत होता है। वादशाह अकबर का यहाँ

नोट Historical Atlas by Charles Joppen ( ऐतिहासिक पुर्टलस चार्ल्स जोप्पन कृत ) और इस जैसे नक्शों में उमरकोट दिया है। अन्य नक्शों में नहीं मिलता है।

( उमरकोट के किले में, जो शहर से ३ मील है ) जन्म, हमीदा बेगम के गर्भ से, तारीख १४ शाबान सन् ८४८ हिज्री सु० ता० २३ नवंबर बृहस्पतिवार सन् १५४२ की रात्रि को हुआ था जो पूर्णिमा थी। मानो हुमायूँ के अंधकार का मिटानेवाला पुत्र रूप चंद्रमा ही तब उदय हुआ था। हुमायूँ यहाँ पर शेरशाह सूरी से चौसा कन्नौज के युद्ध में हारकर पंजाब और मारवाड़, जैसलमेर के रेगिस्तानों में मारा मारा फिरता-फिरता यहाँ आया तो राणा परशोद ने इसको शरण दी थी। किला छोटा होने से, राणा की सलाह से, २००० सवारों से और ५००० पड़ोसी राज्यों की सेना से ठंटा और बक्खर पर राणा ने हुमायूँ को लेकर चढ़ाई कर दी थी। तीन दिन पीछे ही यह आनंद-समा-चार रास्ते में ही मिले। वहाँ घनाभाव से प्रस्तुत कस्तूरी के नाफे को चीरकर अपने उमरावों को कस्तूरी ही बाँटी गई और हुआ की कि जैसे इसकी खुशबू फैले वैसे ही इस बालक का प्रताप भी ससार में फैले। यही हुआ कुर्बूल हुई और अकबर ऐसा ही यशस्वी पुरुष ससार में हो गया। जो शिलालेख उमरकोट में जमाया गया है वह भी कृत्रिम है उसमें सन् गलत है; क्योंकि उसमें ८६३ का हि० सन् जो खुदा है वह अकबर के तख्तनशीनी का है, जन्म का नहीं। "आईने अकबरी" में ( १ ३७६ पर ) जन्म तारीख रजब की १ सु० अक्टूबर १४ या १५ दी है, सो सविशतई



( आफ़ोशेल ) जन्म-दिन से टकराती होने को दी है। पूर्णिमा को जन्मने के कारण अकबर का जन्मनाम “वद्रुद्दीन” रखा गया था जिसका अर्थ “दीन का उगता चाँद” होता है\* । ३५ दिन पीछे वालक अकबर, उसकी माता आदि के सहित, उमरकोट के पास “जूँ” नामी कस्बे के बाग में लाया गया जिसको हुमायूँ ने जीत लिया था, और वहाँ डेरे डालकर रक्षित अवस्था में टिक गया था, क्योंकि गर्म मुल्क था और रमजान के व्रतों के दिन भी आ गए थे। अकबर ने बड़े होने पर सदा ही अपने जन्म-स्थान को याद रक्खा यद्यपि इसकी जिथारत करने को वह नहीं आ सका था।

उमरकोट में काल की गति से कई उथल-पुथल हो गई थीं। बलूच लोगों ने सिंध को ले लिया था। यह इलाका मारवाड़ के कब्जे में भी संवत् १८२७ में आ चुका था। यहाँ पर सोढ़ा राजपूतों की अमलदारी थी। उनकी निर्वलता देखकर सराई जाति के लुटेरों ने लूट-खसोट मचा दी थी। टोलपुरा वंश के मुसलमानों ने वहाँ अपना अमल

\* “स्मिय” साहब राचेत “अकबर का इतिहास” पृ० १३-१४-१५ तथा “भेलीसन” साहब का “अकबर”। अकबर की जन्म-तिथि विवाद-ग्रस्त है। इसको पीछे से वजाय २३ नवंबर के १४ या १५ अक्टूबर माना गया क्योंकि ठीक तिथि याद नहीं रही थी कि समय आपत्तियों का था। इस पर स्मिय साहब ने “इंडियन एंटीक्वेरी” में ( नवंबर मर् १९१५ के में ) बहुत विचार प्रकाशित किया है। ६० ना०।

कर लिया था। राठोड़ों ने महाराजा विजयसिंहजी की आज्ञा से टालपुरों के मुखिया भीर बीजड़ को हटाकर उमरकोट पर कब्जा कर लिया था। कुछ असें तक उमरकोट यों राठोड़ों के कब्जे में रहा था। फिर महाराजा मानसिंहजी के समय में, संवत् १८७० में, टालपुरे मुसलमानों ने उमरकोट के किले और जिले को जोधपुर से पीछा छोड़ लिया था।

(जगदीशसिंह-रचित "मारवाड का इतिहास", पृ० १७८-१६२-५००)

कहते हैं कि उमरकोट के गढ़ और शहर को अमरसिंह या उमरा पँवार जाति के सोढा ने वसाया। इनके सोढों के मुखिया की पदवी राणा थी। ये बड़े ही वीर थे और इनके दानी होने की प्रशंसा थी। कभी इन सोढों का बड़ा दिन प्रताप रहा था और सिंध देश में इनकी धाक पड़ती थी। इनके यहाँ सिंधी छोड़े अच्छे भी थे और संख्या में भी बहुत थे। थोड़ों का दान भी ये किया करते थे। घाट यह नाम उमरकोट के जिले की भूमि का भी है और यह भूमि अपनी सुंदर जलवायु, उपजाऊपन, दूध के पशुओं और रूपवती नारियों के लिये विख्यात रही है। इन रूपलावण्यवाले स्त्रियों की शोभा का वर्णन ही 'हमरोट-छत्तीसी' के आगे के दोहों में बड़ी सुंदरता से वर्णित है। और बाँकीदासजी की काव्य-रचना-चातुरी और प्रतिभा का तथा शृंगार-रस-निरूपण की कला का अच्छा प्रमाण है।

( ६६ )

वारहट कविया मुरारिदानजी ने इसकी टीका भी स्पष्ट और सरल कर दी है जिससे कवि के अमिप्राय का ज्ञान प्रायः यथार्थ होता है ।

( १० ) स्फुट-संग्रह

इस संग्रह और इसमें के कुल गीतों की टीका के संबंध में प्रारंभ में नोट दिया गया है । अधिक लिखने की अव आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है । हम महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकरजी ओझा, वारैठ सीतारामजी लालस, वा० जगदीशसिंहजी गहलोत, वारैठ मुरारिदानजी कविया, वा० महतावचंदजी खारैड, कवि हिंगलाजदानजी वारैठ आदिक विद्वानों के हृदय से कृतज्ञ हैं कि जिनकी कृपा और परिश्रम से यह पृथीय भाग और इसकी भूमिका संपादित हो सके हैं । इति ।

जयपुर,  
३० अगस्त सन् १९३३ ई० ।

पुरोहित हरिनारायण

## विषय-सूची

१	जेहल जस जड़ाव	...	...	१-१८
२	कायरबावनी	...	...	१८-२६
३	भमाल नखशिख	...	...	३०-४३
४	सुजस छतीसी	...	...	४४-५२
५	संतोष बावनी	...	...	५३-६४
६	सिद्धराय-छतीसी	...	...	६५-७४
७	वचन विवेक पच्चीसी	...	...	७५-८०
८	कृपण-पच्चीसी	...	...	८१-८८
९	हमरोट-छतीसी	...	...	८९-९७
१०	स्फुट संग्रह	...	...	९८-१४५



# पाँकीदारा गंधानली

## तीसरा भाग

( १ ) अथ जेहल जस जडाव  
देहा

धारापत जिम धारियाँ, सारा सहज सुभाव ।  
बारा धरम वैखाण्जै, धारा भाराराव ॥ १ ॥  
वीदग विरचो वीनडो, हठ गाढो लेहल्ल ।  
नमण खमण छोडै नहो, जोडै कर जेहल्ल ॥ २ ॥

(१) धारापत = धारनगर का स्वामी, राजा भोज । सारा = सष ।  
वारा = समय । धारा = तुम्हारा । भारा राव = भारमल; यह यादवों की  
जाडेचा शाखा का क्षत्रिय कच्छभुज का राजा था और जेहल का  
पिता था ।

(२) वीदग = विदग्ध, पडित, चारण । विरचो = क्रोध करना ।  
वीनडो = विनती । गाढो = मजबूती से । लेहल्ल = पकड़ रखने से भी ।  
नमण = नम्रता । खमण = क्षमा । जेहल्ल = जेहा; यह भारमल का  
पुत्र बड़ा दानी, उदार, वीर और यशस्वी हुआ है ।

भावार्थ चारण लोगों के क्रोध करने पर भी जेहल उनका विनय  
ही करता है । वह अपनी नम्रता और क्षमा को नहीं छोड़ता है  
और उनसे हाथ जोड़ता है ।

वूठा दूधों वादला, वूठा देव मुरार ।  
 जेहल आज जुहारिया, काछ नरेस कुँवार ॥ ३ ॥  
 रीधो साथों रेणवों, जस गाथों जेहल ।  
 भाराणी वाथों भरे, आथों दिए अपल ॥ ४ ॥  
 भाराणी दुख भंजयो, गुण रंजयो गहीर ।  
 जास खजानै जगत रो, साहिव कीधो सीर ॥ ५ ॥  
 तांत तथंका जसहका, मद प्याला मतवाल ।  
 घोलहराँ चमराँ दुलै, ऊ भाराणी भाल ॥ ६ ॥  
 गुण जस गाजै सरग में, ऊनड़ लाखा भूप ।  
 भाराणी दाता भलो, राणी जायँ रूप ॥ ७ ॥

(३) वूठा = वर्षा हुई । वूठा = प्रसन्न हुए ।

(४) रीधो = रीझना, प्रसन्न होना । साथों = समूह । रेणवों = चारणों से । भाराणी = सारसल का पुत्र । वाथों भरे = आलिंगन करना । आर्घा = धन । अपल = विना रोक ।

(५) भंजयो = मिटानेवाला । गुण रंजयो = गुण से प्रसन्न होनेवाला । गहीर = गहरा, गभीर । सीर = हिस्सा ।

(६) तांत तथंका = तांत का वाजा, सारंगी आदि । जसहका = चढाई का शोर । घोलहराँ = महुल । चमराँ = चामर । दुलै = हिलते हैं । ऊ = वह । भाल = देखो ।

(७) सरग = स्वर्ग । ऊनड़ = यह सिंध देश का बादशाह बड़ा दानी, वीर, वदार और यशस्वी था । इसने संपूर्ण सिंध एक चारण को दान दे दिया था । यह यादवों की जाड़ेचा शाखा का चत्रिय था । लाखा = यह जामभोड के पौत्र फूल का पुत्र था । इसकी कीर्ति गुज-

कहिया रेहा कूड़ नँह, वेहा बायक अ्रेह ।

जे जेहा जेहा नही, त्यागी केहा तेह ॥ ८ ॥

हूँ तो हर्थाँ भामणै, बड़ा समर्थाँ वेह ।

ज्याँ जेहा जादव जिसो, नर निरभियो नरेह ॥ ९ ॥

जेहा मेहा जगत सूँ, मत विरचो सुख मूल ।

जीवाड़ै साराँ जगत, औँ अविच अनकूल ॥ १० ॥

पर मंडल पर दीप में, हद धर घर कथ होत ।

कीरतवर जेहो कुँवर, जाड़ेचाँ धर जोत ॥ ११ ॥

नल राघव जुजठल नही, भू बोकम नँह भोज ।

है जेहो ऊनड़हरो, है नहँ कलू हनोज ॥ १२ ॥

रात क्या तमाम भारतवर्ष में फैली हुई थी । यह भी जाड़ेचा था ।

दाता = दानी । राणी जार्या = राजकुमारों का । रूप = सु दर स्वरूप ।

( ८ ) रेहा = एक रेखामात्र, किंचित । कूड़ = सूँठ । वेहा = विघाता, विधि । बायक = वचन । अ्रेह = यह । जे = जो । जेहा = जेहा राजकुमार; जैसा । केहा = कैसा । तेह = वह ।

( ९ ) तो = तरे । हर्थाँ = हाथों को । भामणै = बलिहारी जाता हूँ । वेह = विधि, प्रह्ला । ज्याँ = जिसने । निरभियो = बनाया । नरेह = मनुष्यों में ।

( १० ) मेहा = वर्षों । विरचो = क्रोध करो । जीवाड़ै = जिवाता है, पालन करता है । औँ = यह तो । अविच = प्रसन्न रहने पर ही ।

( ११ ) पर = दूसरों के । दीप = द्वीप । हद = वेशुमार । कथ = कथा । कीरतवर = कीर्ति प्रदत्त करनेवाला । जाड़ेचाँ = यादव सन्निधि की एक शाखा । धर = पृथ्वी । जोत = ज्योति ।

( १२ ) नल = निषध देश का प्रसिद्ध राजा । राघव = रावणारि



भोज महण मूरत मयण, लोयण लाज अपार ।  
 जेहल राजकुँवार जिम, कुण अन राजकुँवार ॥ १३ ॥  
 गढ़ गढ़ राजा गै गुडै, गढ़ गढ़ राजकुँवार ।  
 भुज जेहलनूँ भेटियो, ओ कोइक अवतार ॥ १४ ॥  
 भेद खुलै पट भाष रा, बाँधी चहुँ विचार ।  
 वीटाँयो पट वरण सूँ, जेहो राजकुँवार ॥ १५ ॥  
 पाव धाव सिर पनगरै, धाव नाव धजराज ।  
 समपै भाराराव सुत, करन चाव जस काज ॥ १६ ॥

रामचंद्र भगवान् । जुजठल = युधिष्ठिर, पांडु के बड़े पुत्र । भू = पृथ्वी ।  
 वीकम = प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य जिनका सवत् प्रचलित है । जनड़  
 हरो = जनड़ का वंशज । कलू = कलियुग । हनोज = अब तक ।

(१३) भोज = रीस, प्रसन्नता । महण = समुद्र । मयण = काम-  
 देव । लोयण = नेत्र । कुण = कौन । अन = अन्य, दूसरा ।

(१४) गढ़ = किला । गै = हाथी । गुडै = पाखर । भुज = कच्छभुज  
 (शहर का नाम) नूँ = को, से । भेटियो = मिले । ओ = यह । कोइक = कोई  
 भाचार्य किलों किलों में राजा, पाखर सहित हाथी और राज-  
 कुमार है किंतु जिसने कच्छभुज में आकर जेहल से भेट की उसे ऐसा  
 ज्ञात हुआ कि यह कोई अवतार है ।

(१५) पट = छट्टे । भाष रा = भाषा के । चहुँ = चारों वेद ।  
 वीटाँयो = विरा हुआ । पट वरण सूँ = छहो वर्णों से, पट् दर्शन के  
 पट् दर्शन भी कहते हैं । स्वामी गणेशपुरीजी ने अपने ग्रंथ 'वीर विनोद'  
 में इनकी गणना यों की है

"जति जोगि सन्यासिय जंगम है, हुज चारण ये पट् दर्शन है ।"

(१६) पाव = पैर । पनगरै = सर्प के शेषनाग के । धाव = वेग ।

हव जादू जस वस हुवो, जग जाहर जेहल्ल ।

चारण चाहै ज्यू करै, भालै भारहमल्ल ॥ १७ ॥

खून करै षट वरन पिण्य, कुँवर करै नँह क्रोध ।

भाराणी क्रन भोज ज्यू, पायो अचल प्रबोध ॥ १८ ॥

पाताँ जीवन पालगर, अनदाता आधर ।

जेहो भारहमल्ल रो, भावठ भंजणहार ॥ १९ ॥

कुढ़ता उडता कूदता, ओद्रकता वप आप ।

जेहो तोखै जाचणी, साहण इसा समाप ॥ २० ॥

मीठो बोलै हँस मिलै, पाताँ नँह ढक पल्ल ।

कर आदर मीठा कवा, जीमाडै जेहल्ल ॥ २१ ॥

नाव = नौका । धजराज = घोड़ा । समपै = देता है । करन चाव = जबरदस्ती, बड़ी इच्छा से ।

( १७ ) हव = अब । जादू = यादव । जाहर = प्रसिद्ध । चाहै ज्यू = मन इच्छित । भालै = देखै ।

( १८ ) खून = अपराध । पिण्य = परतु । भाराणी = भारमल का पुत्र । क्रन = करण । ( महाभारतवाले )

( १९ ) पाताँ = चारणों का । जीवन = जीविका । पालगर = पालन करनेवाला । भावठ = उधारत, दिल का भाव, मनवाञ्छित ।

( २० ) कुढ़ता = शरीर समेटकर चलनेवाले । ओद्रकता वप आप = अपने शरीर की परछाईं को देखकर झिझकनेवाले । ( कुढ़ता उड़ता आदि साहण के विशेषण हैं । ) तोखै = सतोपता है । जाचणी = याचकों को । साहण = घोड़े । इसा = ऐसे । समाप = देकर ।

( २१ ) पाताँ = चारणों से । ढक = ढकता है । पल्ल = आखि की

सूँम मिलै अन सहर में, सहर उजाड़ समान ।  
 जो जेहो वन मे मिलै, वनही राजसथान ॥ २२ ॥  
 जिम नोगुण अवनी अमर, जिम हिरण्खी हार ।  
 इम गढ़वा वाँधा गलै, जेहल राजकुँवार ॥ २३ ॥  
 रामायण जहड़ो रचै, कवियण जस गुण कोय ।  
 जेहो जसरा वायकाँ, तो पण त्रपत न होय ॥ २४ ॥  
 मुगत होण अभिलाष मन, जे कासी जावंत ।  
 आय तणै अभिलाष इम, इण भुजनूँ आवंत ॥ २५ ॥  
 वेहा लिख खोटा वरण, रेहा हीन रहंत ।  
 पात अछेहा धन लहै, जेहा धन जहवंत ॥ २६ ॥

पलकें नँह ढक पद्ल = अलि नहीं छिपाता है । ऊवा = गास, घास ।  
 जीमाडे = जिमाता है, भोजन कराता है ।

(२२) सूँम = कृपण, लोभी । अन = अन्य, दूसरे । उजाड़ =  
 शून्य, सूनसान वन ।

(२३) नोगुण = यज्ञोपवीत, जनेऊ । अवनी अमर = ब्राह्मण ।  
 हिरण्खी = मृगनयनी । गढ़वा = चारण । वाँधा = बाँधे, तमाम को ।

(२४) जहड़ो = जैसा । कवियण = कविजन । वायकाँ = वचनों से ।  
 तो पण = तो भी ।

(२५) मुगत = मुक्ति । जे = जो । आय = धन । तणै = की ।  
 इण = इस । भुज = कच्छभुज ( शहर का नाम ) ।

(२६) वेहा = विधि के, विधाता के । लिख = लिखे हुए । खोटा =  
 बुरे । रेहा = रेखा । पात = चारण । अछेहा = अपार । धन = धन्य ।  
 जहवंत = यशस्वी ।

जेहल वित दीघाँ विना, नर ऊजलो न होय ।  
 भाराघी लीघाँ भलम, जलहर साम्हो जोय ॥ २७ ॥  
 पातसाह राखै प्रसन, जेहाँ तो धय जांय ।  
 भकै मदीनैँ मारगाँ, ताठ सकै कुण तांय ॥ २८ ॥  
 सीना गजाँ गुड़ावही, तीना बडा तुरंग ।  
 औ जेहल कीना अमर, तैँ दीना तरलंग ॥ २९ ॥  
 तू पारस तू कलपतर, चिंतामण घण चाव ।  
 सांभा इंद समंद तु, भारहमाल सुजाव ॥ ३० ॥

(२७) वित = वित्त, धन । ऊजलो = उज्वल । भलम = भलाई ।  
 जलहर = यादव, मेघ । ( मेघ वर्षा के पहले श्याम रंग के दिखाई  
 देते हैं और वर्षा के पश्चात् श्वेत दिखाई देते हैं । अतः दिपु  
 विना मनुष्य उज्वल ( कीर्तिवान् ) नहीं होता है । ( कवि 'समुदाय  
 में कीर्ति का रंग श्वेत माना जाता है । ) साम्हो = सम्मुख । जोय =  
 देखो ।

(२८) प्रसन = प्रसन्न, खुश । धय जांय = बहुत समझनेवाला ।  
 भकै मदीनैँ = मका मदीना में मुसलमानों के तीर्थस्थान हैं । मारगाँ =  
 मार्ग में, रास्ते में । ताठ सकै = छीन सकता है । कुण = कौन । तांय =  
 खींचकर, जबरदस्ती ।

(२९) सीना = छाती । गजाँ = हाथियों को । तीना = तैसे ।  
 तुरंग = घोड़े । अमर = मृत्यु-रहित अर्थात् इनके दान की महिमा रहेगी  
 जब तक ये जीवित रहेंगे । तरलंग = चपल ।

(३०) कलपतर = कल्पवृक्ष । धय चाव = बहुत प्रसिद्ध । सांभा =  
 राजा समो जो जाड़ेचा यादवों का पूर्वपुरुष गजनी का राजा था । उसके  
 वंशज सांभा कहाए । सुजाव = पुत्र ।

मोताहल रहसी नहीं, हैवर हीर चमीर ।  
 जेहलिया जातौ जुगाँ, वाताँ रहसी वीर ॥ ३१ ॥  
 अत घारो जस ऊजलो, जेहल दिस दिस जोय ।  
 हिमकर तै घट वव हुवै, हिमगिर गलजल होय ॥ ३२ ॥  
 सांभा दाता दीठ सह, तो दीठाँ ओ तंत ।  
 हाथ हेक कण चाँपियाँ, मणरी खवर पड़ंत ॥ ३३ ॥  
 प्राण्यौ नूँ तजियाँ पछै, जस सूँ जे जीवंत ।  
 जेहा घर अंवर जितै, उखरो नँह ह्वै अंत ॥ ३४ ॥  
 सायर जल कपिकेत सर, पंचाली चय चीर ।  
 याँसूँ मोजाँ आपरी, बधती जेहल वीर ॥ ३५ ॥

(३१) मोताहल = मोती । हैवर = श्रेष्ठ घोड़ा । हीर = हीरा । चमीर = चामीर, स्वर्ण, सोना । जेहलिया = जेहा साराणी । जातौ जुगाँ = युग व्यतीत होने पर । रहसी = रहेगी ।

(३२) अत = अति, अधिक । घारो = तेरा । हिमकर = चंद्रमा । तै = तो । घट वध = घटता बढ़ता है । हिमगिर = हिमालय । गल = पिघलकर ।

(३३) सांभा = सामो या समो के वंशज । दाता दीठ सह = सब दानियों को देखकर । तो = तुम्हको । ओ = यह । तंत = तख, सार, नतीजा । हाथ हेक कण चाँपियाँ = पकाते समय चावलों में से एक कण को पीसने से मन भर की खबर पढ़ जाती है ।

(३४) प्राण्यौ नूँ = प्राणों को । पछै = बाद में । जस सूँ = यश से । घर = पृथ्वी । अंवर = आकाश । जितै = जब तक । उखरो = उसका ।

(३५) सायर = समुद्र । कपिकेत = अर्जुन । सर = बाण । पंचाली = द्रौपदी । चय = समूह । याँसूँ = इनसे, एक वस्तुओं से । मोजाँ =

कवि पंडित गायक कथक, मंत्री गज भड़ मल्ल ।  
 तो दरबार जिता तिता, जग चावा जेहल्ल ॥ ३६ ॥  
 तूम्हं तुरंगों दान रा, हिमंगिर तलहटियाँह ।  
 गावै गीत तुरंगमुख, जलरख जल बटियाँह ॥ ३७ ॥  
 देस देस लाखा दुवा, जस थारो जेहल्ल ।  
 जावै पिण जावै नहीं, एह अछेरा गल्ल ॥ ३८ ॥  
 गीता नँह तो गीतड़ा, छंद नहीं तो छंद ।  
 जप नँह जपयो तूम्ह जस, मो धर भारहनंद ॥ ३९ ॥

दातव्यता । ब्रधती = विशेष है, अधिक है । अर्जुन के साथ अनंत और  
 अभोग्य थे, जेहल्ल की दानवीरता अपरिमित थी ।

(३६) कथक = कथक, नाचने-गानेवाला । भड़ = शूरवीर ।  
 मल्ल = योद्धा । तो = तेरे । जिता = जितने । तिता = उतने । चावा =  
 प्रसिद्ध है ।

(३७) तूम्ह = तेरे । तुरंगी = घोड़े का । तलहटियाँह = तलौटी  
 तक । तुरंगमुख = किन्नरगण । जलरख = पक्ष ( वरुण के  
 सिपाही ) । जल बटियाँह = समुद्रों तक, अथवा मुख्य और सिद्धों  
 तक । अर्थात् तेरा जस सर्वत्र गाया जाता है आसमुद्र आनाक  
 यश फैल रहा है ।

(३८) लाखा = लाखा फूलायी प्रसिद्ध जाड़ेवा वीर राजा जेहल्ल  
 का पूर्वज था । दुवा = दूसरा । अछेरा = अछेद, अपार आश्चर्य ।  
 गल्ल = बात, कीर्ति मय कथा ।

(३९) तो = तेरे । गीतड़ा = यश के गीत । जपयो = जपा जाता  
 है । मो = मेरे । भारहनंद = भारमल्ल के पुत्र, जेहल्ल ।

जेहल तो दिस विदिस जस, भलहल छाथो भाल ।  
 पूनमपतरो पसरियो, जाणै किरणों जाल ॥ ४० ॥  
 जेहल ताल खडोण ह्वै, तरवर लाकड़ होय ।  
 हरम ढहे हूँढा हुवे, जस अविकारी जोय ॥ ४१ ॥  
 तैं जेहा दीधा तुरी मृग जीपण मलफंत ।  
 चढे जिक्काँ अन पह चढै, तोरण वारण तंत ॥ ४२ ॥  
 माधव दस दस हेक भ्रिड़, औ वारह आदीत ।  
 एक एक तो जिम अवर, जेहा कुँण जग जीत ॥ ४३ ॥

(४०) भलहल = भलभलाट करता हुआ, प्रकाशमान होकर ।  
 भाल = देखकर । पूनमपतरो = चंद्रमा का । जाणै = माने ( उत्प्रेक्षा-  
 वाची शब्द है ) । पसरियो = फेला हुआ है । किरणों जाल = किरणों  
 का समूह ।

(४१) ताल = तलाव । खडोण = वह जमीन जो हल से जाती  
 बोई जाती है । तरवर = वृक्ष । लाकड़ = लकड़ा, सूखा ठूँठ । हरम =  
 घनालों के महल । ढहे = गिरकर । हूँढा = रूँडहर भवन । अविकारी  
 = नहीं बिगड़नेवाला ।

(४२) तुरी = घोड़े । जीपण = जीतने को । मलफंत = कूदते हैं ।  
 जिक्काँ = जो । अन = अन्य । पह = राजा । तोरण = विवाह के समय ।  
 रण = युद्ध के समय । ( हे जेहल । तैंने कूदने में मृगों को जीतनेवाले  
 ऐसे ऐसे घोड़े दान में दिए हैं जो दूसरे राजाओं को विवाह के समय  
 पर अथवा युद्ध के समय पर चढ़ने को मिलते हैं । )

(४३) ईश्वर के १० अवतार विशेष पूज्य हैं, ९२ भी ११ है और  
 सूर्य भी १२ है, तेरे जैसा एक जगत् को जीतनेवाला कोई नहीं है ।  
 इसमें दातव्यता की विशेषता दिखाई है ।

कुँवर पुहालो श्रीकमल, नित भलहलतै नूर ।  
 देखतड़ाँ दुख दूर ह्वै, पाय रजक सुख पूर ॥ ४४ ॥  
 जस देसंतर जावही, रूपंतर बलहंत ।  
 कालंतर न कलीजयो, जेहा तू जायंत ॥ ४५ ॥  
 हुवो महाकवि मंगयो, दातारौँ सिर भाग ।  
 दाता मंगय भाव ह्वै, जेहा जस छल लाग ॥ ४६ ॥  
 सिव सुसरो बाहण सदन, तिलक हार सिर तोय ।  
 जेहल रो यौँ जेहडो, कहै सुजस सह कोय ॥ ४७ ॥

( ४४ ) तुहालो = तेरा । श्रीकमल = मुख । भलहलतै = प्रकाशमान, तेजस्वी । नूर = रूप । देखतड़ाँ = देखते ही । रजक = रोजगार ।

( ४५ ) देसंतर = अन्य देशों में । रूपंतर बलहंत = रूप और बल का नाश हो जाता है । कालंतर = कालांतर में भी । कलीजयो = लुप्त होता है ।

( ४६ ) मंगयों = याचक । जस छल लाग = यश कराने के लिये ।

भावार्थ हे जेहल ! तू है तो दानियों का मुकुट परंतु अपने यश को महाकवियों द्वारा कराने के लिये उनका याचक हो गया है ।

( ४७ ) सिव सुसरो = हिमालय । बाहण = शिव-वाहन, नादिया । सदन = शिव का घर, कैलाश । तिलक = शिव-तिलक, चंद्रमा । हार = शिवहार, मुंडमाळा वा श्वेत सर्प । सिर तोय = गंगा । जेहलरो = जेहल का । यौँ = इन, उक्त वस्तुओं । जेहडो = जैसा । सह कोय = सब कोई ।



असपतियाँ सिर ऊपरै, हेकै नव सुभ होय ।  
साँ देसाँ केरा तुरी, जेहल समपै जोय ॥ ४८ ॥

### सौरठा

भारा तो घन भाग, जाड़ेचा दाखै जगत ।  
तीखे खाग तियाग, जेहल वेढे जनमियो ॥ ४९ ॥  
भाराणी जस भार, भुज मंड्य थारा भुजाँ ।  
ऊगै दीह उदार, पाताँ घर पूगै पवँग ॥ ५० ॥  
सामा तो सुभ राज, ऊगै दन ऊनड़हरा ।  
जेहा धरम जिहाज, कीरत काज दधीच क्रन ॥ ५१ ॥

( ४८ ) असपतिया सिर ऊपरै = वादशाहतो मे वड़ी वादशाहत  
अथवा उत्तम जाति के घोड़े वा उन घोड़े के सरदार । हेकै नव सुभ  
होय = एक के ऊपर नव शून्य, अरव (देश) । साँ = वस । केरा = के ।  
तुरी = घोड़े । समपै = देता है ।

( ४९ ) भारा = भारमल । घन = धन्य । भाग = भाग्य । जाड़ेचा  
= वादव चत्रियों की एक शाखा । तीखे = तेज । खाग = खङ्ग ।  
तियाग = त्याग, दान ।

( ५० ) भाराणी = हे जेहल । भुज = कच्छभुज ( देश ) ।  
ऊगै दीह = दिन उदय होते ही, नित्य । पाताँ घर = चारणों के मकान ।  
पूगै = पहुँचते हैं । पवँग = घोड़े ।

( ५१ ) ऊगै दन = दिन उदय होते ही, नित्य, हमेशा । ऊनड़हरा  
= ऊनड़ के वंशज । जिहाज = जहाज ।

भावार्थ हे समोके वंशवाले, हे ऊनड़ के वंशज जेहल ! तेरा  
राज हमेशा रहे । तू धर्म का जहाज है और कीर्ति के लिये दधीचि और  
कथी जैसा है ।

जलनिध सहल जुआँण, साँमा तू बेड़ा सजै ।  
 मैचकि पड़ै भगाँण, भिसर अरब ऐराक मझ ॥ ५२ ॥  
 ऊनड़रो आचार, भाराणी भूलो नहीं ।  
 जेहा जग दातार, जीवै घर अंबर जितै ॥ ५३ ॥  
 कुरव अनेक कियाह, सोना अस जवहर समपि ।  
 जीवाँ जेहलियाह, सुनजर भारहमाल सुत ॥ ५४ ॥  
 फरहरता कपि फाल, अस दै तै असवारियाँ ।  
 भाराणी भुरजाल, भुजरो भलो भवाड़ियो ॥ ५५ ॥  
 भाराणी भटकेह, आवै कवि पाला अठै ।  
 ऊतरिया अटकेह, अस पावै औराकरा ॥ ५६ ॥

( ५२ ) जलनिधि = समुद्र में । सहल = हवाखोरी के लिये ।  
 जुवाण = जवान । बेड़ा = नावे, नौकापूँ । सजै = तैयार कराता है ।  
 मैचकि = डरकर । भगाँण = भगदड़ । मझ = मध्य ।

( ५३ ) भाराणी = जेहल । दातार = दानी । घर = पृथ्वी ।  
 जितै = जब तक ।

( ५४ ) कुरव = प्रतिष्ठा के कार्य । अस = अश्व, घोड़े । जवहर =  
 जवाहिरात । समपि = देकर । जीवाँ = हम जीते है ।

( ५५ ) फाल = छलांग । फरहरता कपि फाल = वेदर की  
 तरह छलांग मारते हुए । दे = दिष्ट । तै = तूने । असवारियाँ =  
 सवारी । भुरजाल = जवरदस्त किला । भलो = अच्छा । भवा-  
 डियो = कर दिया ।

( ५६ ) भटकेह = भटकते हुए । पाला = पैदल । अठै = यहाँ ।  
 ऊतरिया अटकेह = विश्राम के लिये ठहरते है । अस = घोड़े ।

तोनूँ तूकारेह, सुकवी विरदावै सदा ।  
 दत तू हैवर देह, जेहल जीकारा दिए ॥ ५७ ॥  
 ज्याँ धर जेहलियाह, है तहँ चीतरिया हुवा ।  
 दत है जिफाँ दियाह, माँडोजै जे चीत मफ ॥ ५८ ॥  
 हैवरचंद हुवाह, जेहल तँ दीघा जिके ।  
 देखै भूप दुवाह, भारानद चकोर भत ॥ ५९ ॥  
 जेहा जीण जड़ाव, गजगावों मिस कुँअर गुर ।  
 रचि सपंख हय राव दीघा तँ लाख्वा दुआ ॥ ६० ॥  
 जेहा केहा ज्याग, हैवर राखोड़ा हुवै ।  
 ताजी दीजै त्याग, जस लीजै सोई जगन ॥ ६१ ॥

( ५७ ) तोनूँ = तुम्हको । तूकारेह = तूकारा देकर, रैकारा देकर ।  
 विरदावै = यश-मान करते हैं । दत = दान में । हैवर = थोड़ा छोड़ा ।  
 देह = देकर । जीकारा = नाम के आगे 'जी' लगाकर बोलना ।

( ५८ ) जाँ = जिनके । चीतरिया हुता = चित्राम के, चित्रित किए  
 हुए ( छोड़े ) । जिफाँ = उनके । माँडोजै जे चीतमफ = चित्त में जिनको  
 लिखना चाहिए, अर्थात् चित्त में लिखने योग्य, सुंदर । है = हय, छोड़े ।

( ५९ ) हैवर = छोड़े । जिके = जो । हुवाह = दूसरे । भत =  
 भाँति, तरह ।

( ६० ) लीण = जीन । जड़ाव = जड़ाऊ । दुआ = दूसरा ।

भावार्थ जेहल ! तू दूसरा लाख्वा फूलायी और राजकुमारों में  
 बढ़ा है । तैने छोड़े दान में दिए । उनके जड़ाऊ जीन और गजगावों के  
 मिस से पंख लगा दिए हैं । गजगा = गजके, जीनों के चँवर बँधे हुए ।

( ६१ ) केहा = कैसा । ज्याग = यज्ञ । राखोड़ा = भस्म । ताजी =  
 थोड़ा । जगन = यज्ञ ।

जवहर जेहलियाह, तैं न किया थोड़ाँ तणा ।  
दल सुध दान दियाह, काठी घाटी कवियणी ॥ ६२ ॥  
ऊनड़ हेम उदार, चंदण लाखो चक्रवती ।  
जेहा हुंत जुहार, हुताँ इता हूँता हुआँ ॥ ६३ ॥  
राज भगीरथ राम, जुजठल जस जण जण जपै ।  
कीधौँ मोटा काम, नाम रहै जेहल नरौ ॥ ६४ ॥

भावार्थ हे जेहल ! वह कैसा यज्ञ है जिसमें ( सुंदर ) घोड़े भस्म होते हैं । मन्वा यज्ञ तो वही है जिसमें घोड़े दान देकर यश प्राप्त किया जाता है ।

( ६२ ) जवहर = जौहर व्रत जिसमें विपत्ति के समय राजपूत स्त्रियाँ अपने को अग्नि की भेंट दे देती थीं । यहाँ पर 'जवहर' के शब्दार्थ जलाने या अश्वमेध यज्ञ के हैं । दल = दिल, चित्त । सुध = शुद्ध । काठी = काठियावाड़ो । घाटी = घाट के । ( इन दोनों स्थानों के घोड़े श्रेष्ठ होते हैं । ) अथवा घाटी = अश्वघाटी छंद कवि जोग उच्चारण करते हैं और जेहल उत्तम काठियावाड़ अश्व देता है । घाटी = हमला करनेवाला, तेजतर्रार ।

( ६३ ) ऊनड़ = ऊनड़ जाड़ेचा, जेहल का पूर्व पुरुष । हेम = हेम हड़ाऊ, दानी राजा हुआ था । चंदण = चंदण सोढा क्षत्रिय राजा बड़ा दानी हुआ था । लाखो = लाखों फूलाणी प्रसिद्ध दानवीर । हुत = से । जुहार = मिलना, नमस्कार आदि रामाँ स्यांमाँ । हुताँ इता हूँता हुआँ = इतने ( उपरोक्त दानी राजा ) हुए, उनसे मानों सबसे मिल लिया । अर्थात् जेहल राजा इतना बड़ा दानी था कि अन्य दानियों से कम नहीं था ।

( ६४ ) जुजठल = बुधिष्ठिर । जण जण = प्रत्येक मनुष्य ।

कुण जावै कांवोज, मिसर अरव औराक मक्त ।  
भुज जेहो क्रन भोज, अस रीभाँ वगसै उसा ॥ ७४ ॥

इति जेहुल जस जडाव ।

( ७४ ) कुण = कान । कांवोज, मिसर, अरव और ऐराक के बोड़े प्रसिद्ध होते हैं । भुज = कच्छभुज में । रीभाँ = प्रसन्न होकर । उसा = वैसे ।

इति जेहुल जस टीका समाप्त ।

## ( २ ) अथ कायरबावनी

सिव सिवसुत हिमगिरसुता, विसनु दिवाकर वंद ।  
 अब कायर अपहास री, रचना रचूँ अमंद ॥ १ ॥  
 आग न जागै आँखियाँ, तिण सिर दीर्घाँ तंत ।  
 पल पल मुख पुलकावणो, कायर ही उचकंत ॥ २ ॥  
 दिन नूँ रजनी दाखियाँ, दाखै तारावंत ।  
 न दे ओहड़ो वाँ नराँ, कनैँ म राखो कंत ॥ ३ ॥  
 कथ म राखो कायराँ, करै नजर जो कोड़ ।  
 दोयण दल बीटोदियाँ, छल कर जावै छोड़ ॥ ४ ॥  
 कथ सुहावै ज्यूँ करो, कायर नावै काज ।  
 रहै न कायर राज में, रहै जिकाँ घर राज ॥ ५ ॥

( १ ) सिवसुत = गणेश । हिमगिरसुता = पार्वती । दिवाकर = सूर्य । वंद = नमस्कार करके । अपहास री = उपहास की ।

( २ ) आग = अग्नि, तेज । जागै = प्रज्वलित होता है । तिण = उसके । तंत = निश्चय । ही = हृदय । उचकत = उछलने लग जाता है, धड़कने लग जाता है ।

( ३ ) नूँ = को । रजनी = रात । दाखियाँ = कहने पर । ओहड़ो = चलता जवाब । म = भत । कनैँ = पास, नजदीक ।

( ४ ) दोयण = शत्रु । दल = फौज, सेना । बीटोदियाँ = घेरा डालने पर ।

( ५ ) कथ = कंत, पति । सुहावै = अच्छा लगै । नावै = नहीं आता है । जिकाँ = जिनके ।

साँमा तू सुदतार, धर भोग्या आँयाँ घणों ।  
 वित वगसण वडवार, हरख थणो तो उर हुवै ॥ ६५ ॥  
 वित विलसणरी वार, नर सठ वित विलसै नहीं ।  
 जावै वीत जियार, जेहल पछवावै जिके ॥ ६६ ॥  
 नामाँ कामाँ नेक, कीधा तैं जेहा कुँवर ।  
 हेक रसण सूँ हेक, कवियण सकै वखाण कुण ॥ ६७ ॥  
 दिनकर बाहण देह पाहण फूटै पोड़ सूँ ।  
 जेहल साहण जेह, साहण समुँद समापिया ॥ ६८ ॥  
 मिलै नहीं मकराँण, ताज केच साँभल तुरी ।  
 जेहलिये घण जाँण, भोजाँ दियण मँगविया ॥ ६९ ॥

भावार्थ हे जेहण ! बडे कार्य करने से मनुष्यो का नाम रह जाता है । जैसे राजा भगीरथ, भगवान् रामचंद्र और युधिष्ठिर का यश प्रत्येक मनुष्य जपता है ।

( ६५ ) थणा = बहुत । वगसावण = देने में । वडवार = बड़ा । थणो = अधिक । हरख = हर्ष, खुशी ।

( ६६ ) विलसणरी = भोगने की । वार = समय । विलसै = भोगते हैं । जियार = जीवन । वीत = समाप्त ।

( ६७ ) हेक = एक । रसण = जिह्वा । कुण = कौन ।

( ६८ ) दिनकर-वाहण = सप्तश्व । पाहण = पत्थर । पोड़ सूँ = पाँव से । साहण = घोड़े ।

( ६९ ) मकराण = मकरान, काबुली घोड़े । ताज = अरबी घोड़ा, ताजी । अथवा इन देशों में जो घोड़ों के लिये प्रसिद्ध है जो घोड़े नहीं मिलें वैसे बड़िया सुँदर-घोड़े मँगण । थण जाँण = बहुत समझवाला ।

हव जेहल रिपहाड़, सोनग पल जगदेव सिर ।  
 गुर जसभंडा गाड, ऊवरिया यल ऊपरै ॥ ७० ॥  
 काला जल रा कीप, बाहण आणै पार विण ।  
 जस साटै जग जीप, जेहल लूटावै जिके ॥ ७१ ॥  
 मृग मरकट मन भीन, नाव नागरीनयण नट ।  
 देख हुवै औ दीन, अस जेहल बगसै इसा ॥ ७२ ॥  
 जेहो सीहाँ जाड़, ऊवेडै अनडहरो ।  
 चारण माथै चाड, रूपग सुण सुण राखिया ॥ ७३ ॥

( ७० ) हव = अब । रिपिहाड = दधीचि ऋषि का अस्थिदान इन्द्र  
 को । सोनग पल = सोनग राठोड़ ने शरीर का मांस काटकर दिया ।  
 जगदेव सिर = जगदेव पँवार ने अपना सिर कंकाली भाटण को माँगने  
 पर दान में दिया था । गुर जस = भारी यश का भंडा ( स्तंभ ),  
 गाड़कर स्थापन करके । ऊवरिया = रचित रहे, अमर हो गए ।

( ७१ ) काला जल रा कीप = काले समुद्र ( ब्लेक सी ) के आस  
 पास के देशों ( इराक, बाकू आदि ) में घोड़े अच्छी नसल के पैदा होते  
 हैं । कीप = द्वीप का पाठांतर प्रतीत होता है । बाहण = वाहन,  
 घोड़े । आणै = मँगाए । पार विण = अपार । साटै = बदले में ।  
 जीप = जीतनेवाला । जिके = वे, उनको ।

( ७२ ) औ = यह । अस = अश्व । बगसै = दान में देता है  
 इसा = ऐसे । मृग आदि के एक एक गुण उन अच्छे घोड़ों में है जो  
 दान में जेहल राजा देता है ।

( ७३ ) सीहाँ = सिंहों की । जाड = डाढ़ें । ऊवेडै = उखाट  
 सकता है । चाड = चढ़ा रखे है । रूपग = यशकविता ।



( १८ )

कुण्ण जावै कांवोज, मिसर अरव औराक सक्त ।

भुज जेहो क्रम भोज, अस रीभाँ वगसै उसा ॥ ७४ ॥

इति जेहुल जस जडाव ।

( ७४ ) कुण्ण = कौन । कांवोज, मिसर, अरव औराक के बोड़े प्रसिद्ध होते हैं । भुज = कच्छभुज में । रीभाँ = प्रसन्न होकर । उसा = वैसे ।

इति जेहुल जस टीका समाप्त ।

## ( २ ) अथ कायरबावनी

सिव सिवसुत हिमगिरसुता, विसनु दिवाकर वंद ।

अब कायर अपहास री, रचना रचूँ- अमंद ॥ १ ॥

आग न जागै आखियाँ, तिण सिर दीर्घाँ तंत ।

पल पल मुख पुलकावणो, कायर ही उचकंत ॥ २ ॥

दिन नूँ रजनी दाखियाँ, दाखै तारावत ।

न दे ओहड़ो वाँ नराँ, कनै म राखो कंत ॥ ३ ॥

कंध म राखो कायराँ, करै नजर जो कोड़ ।

दोयण दल बीटोदियाँ, छल कर जावै छोड़ ॥ ४ ॥

कथ सुहावै ज्यूँ करो, कायर नावै काज ।

रहै न कायर राज में, रहै जिकाँ घर राज ॥ ५ ॥

( १ ) सिवसुत = गणेश । हिमगिरसुता = पार्वती । दिवाकर = सूर्य । वंद = नमस्कार करके । अपहास री = उपहास की ।

( २ ) आग = अग्नि, तेज । जागै = प्रज्वलित होता है । तिण = उसके । तंत = निश्चय । ही = हृदय । उचकत = उछलने लग जाता है, धड़कने लग जाता है ।

( ३ ) नूँ = को । रजनी = रात । दाखियाँ = कहने पर । ओहड़ो = बलटा जवाब । म = मत । कनै = पास, नजदीक ।

( ४ ) दोयण = शत्रु । दल = फौज, सेना । बीटोदियाँ = घेरा डालने पर ।

( ५ ) कंध = कंत, पति । सुहावै = अच्छा लगै । नावै = नहीं आता है । जिकाँ = जिनके ।

गाडों भरिया गोलियाँ, सूना सदन सुरंग ।  
 कंध धर्या ही कायरों, जागीजै इम जंग ॥ ६ ॥  
 कंध म राखो कटक में नर कायर निरलज्ज ।  
 काला बलदाँ काढ़जै, काँकल जीपख कज्ज ॥ ७ ॥  
 काल न आवै कायरों, वालम विसवा वीस ।  
 पकड़ै रण धर पंथ नूँ, पकड़ै नैह पाँडीस ॥ ८ ॥  
 कायर अधरम कुजस सूँ, नीच न डरपै नाह ।  
 डरपै परदल देखियाँ, रण तज लागै राह ॥ ९ ॥  
 लाखों सठ दे लीजिए, पंडित गुण भरपूर ।  
 कायर लाखों बेचकर, साहित्य लीजै सूर ॥ १० ॥

( ६ ) गोलियाँ = गुलामो से । सूना = शून्य । सुरंग = सभा  
 हुआ । धर्या = ब्रह्म । इम = इस प्रकार । जंग = युद्ध ।

( ७ ) कटक = युद्ध, फौज । बलदाँ = बैलो पर । काढ़जै = निकाल  
 देना चाहिए । काँकल = युद्ध । जीपख = जीतने को । ( प्राचीन  
 काल में देश-निर्वासन वंद के समय वंडित पुरुष का काला सुँह,  
 काले कपड़े करके काली सवारी ( बैल या गधा ) पर बैठाकर देश  
 बाहर कर देते थे ।

( ८ ) वालम = स्वामी, पति । विसवा वीस = निश्चय ही । पकड़ै  
 रण धर पथ नूँ = युद्ध से धर का रास्ता पकड़ता है अर्थात् युद्ध से धर  
 भाग जाता है । पाँडीस = तलवार ।

( ९ ) नाह = पति, स्वामी । डरपै = भय करता है । पर-  
 दल = दूसरों की सेना को । लागै राह = भाग जाता है ।

( १० ) सठ = शठ, मूर्ख । साहित्य = हे स्वामी । सूर = शूरवीर ।

भेष लियाँसूँ भगत नँह, ह्वै नँह गहयाँ हूर ।  
 पोथी सूँ पंडित नहों, ससतर सूँ नँह सूर ॥ ११ ॥  
 आवै अँनदातार नूँ, भारथ खल्लाँ भलाय ।  
 पितरेसुर जिण रा पडै, नरक बिचालै न्याय ॥ १२ ॥  
 ज्यूँ कुकवि की जीभ में, ब्रह्मसुता नँह बास ।  
 त्यूँ कायर री तेग में, नँह कालिका निवास ॥ १३ ॥  
 अदताँ केरी अत्थ ज्यूँ, कायर री किरमाल ।  
 कोइ प्रकाराँ कोससूँ, नँह पावै नीकाल ॥ १४ ॥  
 संजन करै सधोर मन, सूरा साराँ धार ।  
 कायरडा संजन करै, आँसू धार मभार ॥ १५ ॥

( ११ ) गहयाँ = भूषणों से, जेवरों से । हूर = सु दर । भगत = भक्त । पोथी = पुस्तक । ससतर सूँ = शब्द से ।

( १२ ) अँनदातार = रोटी देनेवाला । भारथ = युद्ध में । खल्लाँ भलाय = शत्रुओं को देकर, शत्रुओं के सिपुर्द करके । पितरेसुर = पितृश्वर । बिचालै = भ्रंदर । न्याय = ठीक ही है ।

भावार्थ जो अपने अन्नदाता को युद्ध में शत्रुओं के सिपुर्द कर आता है उसके पितृश्वरगण नरक में पडने है ।

( १३ ) ब्रह्मसुता = सरस्वती । तेग में = तलवार में ।

( १४ ) अदताँ = कूपियों । केरी = की । अत्थ = धन । किरमाल = तलवार । कोस सूँ = कोप से, खजाने से, तलवार की म्यान से ।

( १५ ) संजन करै = स्नान करता है । सधोर = धैर्यसहित । सारा धार = तलवारी की धार में ।

आँसूँ नाखै आँख सूँ करे हूँता किरमाल ।  
 भागल नँह नाखै भिड़ज, असहाँ सिर आताल ॥ १६ ॥  
 वरणी कायरता वड़ी, खोड़ाँ मॉमल खोड़ ।  
 देखै खल मुख में दिवै, तेग थकाँ त्रण तोड़ ॥ १७ ॥  
 कहणो गोलाँ हूँत की, डोलाँ हूँत डरंत ।  
 खल दल केरी खेत सूँ कायर खेह करंत ॥ १८ ॥  
 काँकल समै कुबेलियाँ, म दे संग महभाय ।  
 निजराँ आगै निमष में, हार मोर हूँ जाय ॥ १९ ॥

( १६ ) नाखै = गेरते हैं, पटकते है । भागल = युद्ध से भागने-  
 वाला, कायर । भिड़ज = घोडा । असहाँ सिर = रात्रुओं के ऊपर ।  
 आताल = तेजी से ।

( १७ ) खोड़ा = ऐवों । खल = शत्रु । दिवै = देते है । थकाँ =  
 मौजूद होने पर ।

भावार्थ कायरता सब ऐवों का ऐव कहा गया है । फिर भी  
 कायर हाथ में तलवार होने पर भी रात्रु को देखकर मुख में तृण दे  
 लेता है अर्थात् अपनी दीनता प्रकट करता है ।

( १८ ) गोलाँ हूँत = तोपों के गोलों से । की = क्या । डोलाँ  
 हूँत = आँखों से । खेह सूँ = रज से । खेह करंत = खाक धूल करते  
 हैं अर्थात् कुछ नहीं करते है ।

( १९ ) समै = समय पर । कुबेलियाँ = खोटे साथियों का ।  
 म = मत । महभाय = हे देवी । हार मोर हूँ जाय = ( 'चित्र का  
 मयूर हार को निगल गया था', यह एक किंवदंती है ) चित्रित मयूर के  
 आगे हार हुआ जैसे अर्थात् नायब हो जाता है ।

जाणै बल्लभ जीवणो, कायर नाणै कोह ।  
 लोपै साँकल लोह री, लख रण नागो लोह ॥ २० ॥  
 आवै लोही ईखियाँ, तन ज्याँ, भड़ौ तिवाल ।  
 अचरज किसो अचेत ह्वै, देख लोह विकराल ॥ २१ ॥  
 ज्याँ कामण पोसाक कर, पाछानूँ पेरंत ।  
 भागल पाछे भालही, भाजंतो इण भंत ॥ २२ ॥  
 दव विण सारा दाहिया, अथवा खारच अंग ।  
 नर कायर बाँछै नहीं, जिण घर माथै जंग ॥ २३ ॥  
 करसण सेही स्याल बिल, गिरत्रिय बाँभण गाय ।  
 समरांगण मँह साधणा, चाहे चित्त चलाय ॥ २४ ॥

( २० ) बल्लभ = प्रिय, प्यारा । जीवणो = जीवन को । नाणै = नहीं जाता है, नहीं करता है । कोह = क्रोध । नागो लोह = नंगा शस्त्र ।

( २१ ) लोही = खून । ईखियाँ = देखने से । भड़ौ = योद्धाओं को । तिवाल = चकर । किसो = कैसा ।

( २२ ) कामण = श्री । पोसाककर = कपडे पहिनकर । पाछानूँ = पीछे की ओर । भालही = देखती है । भाजंतो = भागता हुआ । भंत = भाँति, तरह ।

( २३ ) दव = अग्नि । विण = बिना । दाहिया = जला, या जलाया । खारच = खारिज, बेकार । बाँछै = चाहै । माथै = ऊपर, में । अर्थात् कायर ऐसा डरपोक होता है कि घरों की मामूली लड़ाई में जाना नहीं चाहता । उसकी तरफ से चाहे सारा घर या वन जल जाय या तबाह हो जाय चाहै शरीर का कोई अंग ही कट जाय और खारिज हो जाय ।

( २४ ) करसण = किसान । सेही = एक पशु जिसके शरीर पर लंबे लंबे काँटे से होते है । स्याल = शृगाल । बाँभण = ब्राह्मण ।

लाजा लू वागाँ मही, कायर कटकाँ भाँहि ।  
 परसे नरकर रो पवन, सकुचै संसो नाँहि ॥ २५ ॥  
 त्रण दाँतों लेणा पुरव, आडा देणों पाँण ।  
 भारथ जे पड़ भागणों, औ कुभटाँ अवसाण ॥ २६ ॥  
 भागल भारथ भीड़ मे, वाणो सह विसरंत ।  
 मुख वापूड़ा मावडी, भाईड़ा भापंत ॥ २७ ॥  
 काँकण सभै कुवेलियाँ, सरकण तणों सुभाव ।  
 नियुणाँ धिर रोपै नहीं, पाव वड़ी ही पाव ॥ २८ ॥  
 नर कायर आँणै नहीं, लूँण लिहाज लगार ।  
 धोलै दिन छेडै, धणी, अणी मिलै उण वाण ॥ २९ ॥

कायर मनुष्य युद्ध में किसान, खो, ब्राह्मण, गाय बन जाता है अथवा  
 सेही ( शृगाल ) के समान विलु में वा पहाड़ की गुफा में छुप  
 जाता है ।

( २५ ) लाजा लू = लजवन्ती, लुईमुई । परसे = स्पर्श करने से ।  
 सकुचै = सकुचित होते हैं । संसो = संशय ।

( २६ ) त्रण = वृण । दाँतों = दंतों में । पाँण = हाथ । औ =  
 यह । कुभटाँ = कायरों के । अवसाण = मौके ।

( २७ ) भीड़ में = मुंड में । विसरंत = भूल जाता है । वापूड़ा =  
 बेचारा, दीन । मावडी = माता । भाईड़ा = भाई ।

( २८ ) सरकण = खिसकना, भगना । पाव = पैर ।

( २९ ) लूँण = नमक । लगार = जरा भी । धोलै दिन = दिन  
 ही में, प्रगत में । धणी = स्वामी । अणी = सेना । उण बार =  
 उस समय ।

काँकल छोड़े कूदियो, भागल पौरस-भंग ।  
 कीधा जाणै काठमाँ, कुड़ नीसरे। कुरंग ॥ ३० ॥  
 कायर थाको दौड़कर, ससि सूँ करै पुकार ।  
 अग ज्यूँ मूक वसावजै, मंडल तणै मँभार ॥ ३१ ॥  
 गत गँवर कटि केहरी, रमणी हाटक रग ।  
 कुच गिरवर लोयण कमल औँ हैं कुमले अंग ॥ ३२ ॥  
 सुख सूँ वैठी सदन में, क्यूँ पूछो कुसलात ।  
 तो तन कुसलायत तणी, बालभ पूछूँ बात ॥ ३३ ॥

( ३० ) काँकल = युद्ध । भागल = भगोड़ । पौरसभंग = पुरु-  
 पार्थहीन । काठमाँ = भागना, दौड़ा । कुड़ = एक प्रकार का लोहे  
 का यंत्र जिसके द्वारा हरिण आदि पशु पकड़े जाते हैं । पुरुपार्थ-हीन  
 ( कायर ) मनुष्य युद्धभूमि से इस तरह भागता है मानो काठ में किया  
 हुआ हरिन निकलकर भागता है ।

( ३१ ) थाको = धका हुआ । ससि सूँ = चंद्रमा से । मूक = मुकको ।

( ३२ ) गत = गति । गँवर = हाथी । केहरी = सिंह । हाटक =  
 स्वर्ण । लोयण = नेत्र । औँ = यह ।

भावार्थ—किसी स्त्री का स्वामी युद्ध से भागकर घर आया है और  
 अपनी स्त्री से पूछ रहा है हे स्त्री ! तुम्हारी गज सी चाल, सिंह जैसी  
 चमर, कंचन सा रंग, गिरि समान कुच, कमल से नेत्र और अंग तो  
 कुशल से हैं ?

( ३३ ) क्यूँ = क्यों । कुसलायत = कुशलता । बालभ = स्वामी, पति ।

भावार्थ वह स्त्री उत्तर देती है मैं तो मकान में अच्छी तरह  
 रहती थी, मेरी कुशल क्यों पूछते है ? हे स्वामी, आपके शरीर की  
 कुशलता मैं पूछती हूँ । ( क्योंकि आप युद्धभूमि से आए हैं । )



मूँछ नाक निर रो सुकूट, ममतर नाम ननाह ।  
 सावत लायो नमर मूँ, के नेह लायो नाह ॥ ३४ ॥  
 मूँछ केस खंडत नहीं, नाक न खंडत कोर ।  
 पड़ी पुलताँ पावड़ी, सुकुलीणी तज मोर ॥ ३५ ॥  
 आपड़ियो मो जेघ अरि, तजिया ममतर तेध ।  
 लागा धंघै लोण रै, आयो कुसले, एध ॥ ३६ ॥  
 धण सुण थारा धरम मूँ, नावत लायो सीस ।  
 मोल अवार मँगावसूँ, पावो घोम पचीम ॥ ३७ ॥  
 पाव वजाजाँ पृछ पी, लेयो मोल मँगाड़ ।  
 ईजत किय विघ आणसो, पृछूँ हेलापाड़ ॥ ३८ ॥  
 ममर दिलोकर साँम नूँ, लस आवै लवड़ाक ।  
 मूँछ थकाँ मूँडत जिर्क, नाक थकाँ विण नाक ॥ ३९ ॥

( ३४ ) सिर रो सुकूट = पगड़ी । ममतर = मन्त्र । नाम = स्वामी । ननाह = कवच । सावत = सावित, अखंड ।

( ३५ ) पुलंताँ = भगते समय । पावड़ी = पगड़ी । सुकुलीणी = अच्छे कुलवाली । सोर = शोर ।

( ३६ ) आपड़ियो = पगड़ा । मो = मे, सुकूटो । जेघ = जहाँ । तेध = वहाँ । धंघै = काम । एध = यहाँ ।

( ३७ ) धण = हे स्त्री । थारा = तेरे । मोल = मूल्य से । अवार = अभी । मँगावसूँ = मँगाऊँगा । पावाँ = पगड़ियाँ ।

( ३८ ) वजाजाँ = कपडे बेचनेवालों को । पी = हे पति । लेसो = लेओगे । मँगाड़ = मँगाना । किय विघ = किस तरह । आणसो = लाओगे । हेलापाड़ = जोर से कहकर, पुकार पुकारकर ।

( ३९ ) ममर = युद्ध में । दिलोकर = डीला देकर, पुकाकी

हूँ कुल मे पापी हुवो, पत नूँ दीन्ही पीठ ।  
 तिया पतिव्रत पाल तू, धिक धिक मत कह धीठ ॥ ४० ॥  
 के खाधा भीठा कवा, प्रीतम जिगरै पास ।  
 तो खातों खाराकवा, होजे काँय उदास ॥ ४१ ॥  
 काँकल मे खारा कवा, मिलिया नहीं मजाल ।  
 तीर बाँण दीठाँ तठै, लागा गोला लाल ॥ ४२ ॥  
 खाँवँद कवा खवाड़िया, भीठा लेले मोल ।  
 सहँस गुणाँ में सीलिया, बोले भीठा बोल ॥ ४३ ॥  
 बादल ज्यूँ सुरधनुष बिण, तिलक बिना दुजपूत ।  
 बनो न सोभै मोड़ विन, घाव विनो रजपूत ॥ ४४ ॥

छोड़कर । सांम नूँ = स्वामी को । लस आवै = भागकर चला आवै ।  
 लबदाक = लवाली, बकवादी ।

( ४० ) हूँ = मैं । पत नूँ = स्वामी को । धीठ = धृष्ट, जबरदस्त ।

( ४१ ) के = कितने ही । खाधा = खाये । कवा = गास, घास,  
 लुकमे । काँय = क्यों ।

( ४२ ) काँकल = युद्ध । मजाल = जरा भी । दीठाँ = दिखाई  
 दिपु । तठै = वहाँ ।

( ४३ ) खाँवँद = स्वामी ने । खवाड़िया = खिलाए । सीलिया =  
 बदले में दिए ।

( ४४ ) बादल = मेघ । सुरधनुष = इंद्रधनुष (जो वर्षा के पहिले  
 या पीछे दिखाई देता है) । दुजपूत = ब्राह्मण का पुत्र । बनो =  
 दूल्हा, बीव । मोड़ = सेहरा, मोर । ( जो विवाह के अवसर पर  
 सुँह के आगे बांधा जाता है । )

पिसण पीठ खग जो जहूँ, पिसण जड़ै मो पीठ ।  
 किस्सूँ नफो कह कामणी, राड़ वजायाँ रीठ ॥ ४५ ॥  
 न लिपूँ हूँ बदलो नियम, असमर बाहो आन ।  
 साँचा मन सूँ सिखियो, गौरी ब्रह्म-गिनाँन ॥ ४६ ॥  
 पैलो खोसै पावड़ी, हँसे दिखालूँ दत ।  
 कायर मोनै क्योँ कहै, सुध सुभावाँ संत ॥ ४७ ॥  
 तैं लारैँ तरवार रै, पायो रजक पलीत ।  
 दीधो खोँद नूँ दगो, संत नही इण रीत ॥ ४८ ॥  
 काटल आवध मूक्त कर, मन मंदाइण ब्रत्र ।  
 आवध राखै ऊजला, मैला ज्योँरा मत्र ॥ ४९ ॥

( ४५ ) पिसण = रात्रु । खग = खड्ग । जहूँ = चढ़ाना, वार  
 करना । मो = मेरी । किस्सूँ = कैसा । नफो = लाभ । राड़ =  
 लड़ाई । रीठ = युद्ध । राड़ = वजायाँ रीठ = जवादेस्त युद्ध करने में ।

( ४६ ) लिपूँ = लूँगा । असमर = तलवार । गौरी = हे स्त्री !  
 गिनाँन = ज्ञान ।

( ४७ ) पैलो = दूसरा । खोसै = छीने । हँसे = हँसकर ।  
 दिखालूँ = दिखाऊँ । मोनै = मुझको ।

( ४८ ) तैं = तूने । लारैँ = पीछे । रजक = जीविका । पलीत =  
 चीथड़ों का पुतला, हे नापाक । दगो = धोखा ।

( ४९ ) काटल = काट लगे हुए, जग चड़े हुए । आवध = हथि-  
 चार । मंदाइण = मंदाकिनी गंगा । ब्रत्र = वर्ष । ऊजला = साफ,  
 उज्वल । मैला ज्योँरा मत्र = जिनके मन कलुषित है अर्थात् जो पापी  
 हत्यारे हैं ।

अधिक सूर कै हूँ अधिक, वनिता समझ विवेक ।  
 जग सारो मो नूँ हँसै, उग सूँ नारद एक ॥ ५० ॥  
 दल ओला पैला दुहँ, लथो बत्थ हुवाह ।  
 जेथ मुवाजे जीविया, जे जोविया मुवाह ॥ ५१ ॥  
 पिसणाँ रा सरसूँ पुले, वप में लियो वचाय ।  
 सो वप तैँ कुवचन सराँ, घायो अगगत धाय ॥ ५२ ॥  
 भारथ मत कर भामणी, मो भारथ नँह भेल ।  
 वापी कूप बताव बिस, कै कर म्हासूँ केल ॥ ५३ ॥  
 एकोतरै अठार सै, साँवण दुतियक स्वेत ।  
 वाँकै ग्रंथ वणावियो, कायर कुजस निकेत ॥ ५४ ॥

इति कायर वावनी ।

भावार्थ—कायर कहता है कि मेरा चित्त शांत है इस कारण मेरे हथियारों पर जंग चढ़ी हुई है । जो पापी हत्यारे हैं वे अपने हथियारों को उज्ज्वल रखते हैं ।

( ५० ) सूर = शूरवीर । वनिता = हे स्त्री ।

( ५१ ) दल = सेना । ओला = इधर के । पैला = उधर के । लथोबत्थ = लथपथ । जेथ = जहाँ । मुवा = मरे ।

( ५२ ) पुले = भागकर । घायो = घायल किया । घाय = घावों से ।

( ५३ ) भारथ = लड़ाई । भामणी = हे स्त्री । वापी = वावड़ी । कूप = कूआ । बिस = विष, जहर । कै = अथवा । केल = क्रीड़ा ।

( ५४ ) एकोतरै अठारसै = १८७१ संवत् । दुतियक = द्वितीया । स्वेत = शुक्ल ।

इति कायरवावनी की टीका समाप्त ।

### ( ३ ) अथ भक्तान् राधिकान् मिथुन-नग्न-वर्णन

मधुकर भ्रमत नुवाम मद, भाल नुधाकर भाव ।  
 मोदक कर मन मोदमय, नितजय ज्ञान निवाम ॥  
 नितजय ज्ञान निवास्त, पतो गगनाचका ।  
 लंबोदर हरनंद सिरोमण लायका ॥  
 भामणि श्री ब्रजराज वर्णा हित नू भजे ।  
 सिध नग्न वरणां जाम क बुद्धि ममापजे ॥ १ ॥  
 ससि-वदनी तो सिर नरत्, मेचक केन मजाण ।  
 हिण कांम पावक हुवै, जास धुंवां मन जाण ॥  
 जाम धुंवां मन जाण नसां सग नीनरे ।  
 मच्छर अच्छर गात, उडाया मन हरे ॥

( १ ) मधुकर = भ्रमर । भाल = लजाट । नुधाकर = चंद्रमा ।  
 भाल = गोभायमान । मोदक = लड्डू । मोदमय = आनंद सहित ।  
 हरनंद = शिव-पुत्र । वर्णा = अधिका । हित नू = प्रेम से । भजे =  
 भजन करती है । जामक = जिपका ( यहाँ 'क' पादपूर्ति के लिये है,  
 इती प्रकार आगे भी जानना ) । ममापजे = त्रीजिणु ।

( २ ) ससिबदनी = चंद्र के से मुखवाली । मेचक = काला ।  
 तो = तेरे । कांम पावक = कामाग्नि । हुवै = प्रज्वलित है ।  
 धुंवां = धूम । मन = मानो ( वरप्रेसावाचक ) । नसां = नसों के ।  
 नीसरै = निकली है । मच्छर = मद्, नग्न । अच्छर = अधस्तराण ।

सोकडल्या चख माँहि करै कडवाइयाँ ।  
 ते आँसू टपकंत हिए दुचताइयाँ ॥ २ ॥  
 सित कुसुमाँ गूँथी सुखद, वेणी सहियाँ व्रंद ।  
 नागणि जाणै नींसरी, साँपडि खीरसमद ॥  
 साँपडि खीरसमंद दुरंग सँवारिया ।  
 धारा फेण कलिंद, तनूजा धारिया ॥  
 भाषण उपमाँ और मनोरथ भेलिया ।  
 मझ आटी मखतूल क मोती भेलिया ॥ ३ ॥  
 काँन जडाऊ काम रा, कुंडल धारण कीन्ह ।  
 झलहल तारा भूमका, दुहुँ पाखाँ ससि दीन्ह ॥  
 दुहुँ पाखाँ ससि दीन्ह अँधार निकदवा ।  
 तेजोमय रथ तास निघात पही नवा ॥  
 माँग फूल सिर फूल जडाऊ मडिया ।  
 खिण खिण निरखै नाह, हिए दुख खंडिया ॥ ४ ॥

सोकडल्या = सौते, सपलियाँ । कडवाइयाँ = बुरी लगती हैं ।  
 दुचताइयाँ = दुख होता है ।

( ३ ) सित = स्वेत । सहियाँ व्रद = सखियो का समूह ।  
 साँपडि = स्नान करके । दुरंग सँवारिया = दो रंग बनाकर । धारा =  
 गंगा नदी । कलिंद-तनूजा = यमुना नदी । भाषण = कहने को ।  
 भेलिया = मिलाए । मखतूल = काला रेशम । आटी = बन्नी ।

( ४ ) काम रा = कामदेव के । झलहल = झलझलाते हुए ।  
 भूमका = लटकण । दुहुँ पाखाँ = दोनों पक्षों में, दोनों और ।  
 अँधार = अंधकार । निकदवा = नाश करने को । तेजोमय = सूर्य ।

जड़ियो तिलक जवाहरों, जाँचै दीपक जांत ।  
 वालम चीत पतंग विधि, हित सूँ आसक होत ॥  
 हित सूँ आसक होत भली छवि भालरी ।  
 जुलफ वैधै मन मीन वणी रख जालरी ॥  
 वरतुल सुधम कपोल रसीली वामरा ।  
 क्रिया तयारी वेह दरप्पण कॉमरा ॥ ५ ॥  
 काली भमरावलि कली, भूँहाँ वाँकड़ियाँह ।  
 कमल प्रभात विकासिया, इसड़ी आँखड़ियाँह ॥  
 इसड़ी आँखड़ियाँह क्रिया भ्रम वारणै ।  
 सर मनमथ गा हारि क अंजण सारणै ॥  
 खूनी न रही काय खतंगों खंजनों ।  
 नेही है मुनिराज विसारि निरंजनों ॥ ६ ॥

तास = तसके । निघात = विशेषकर । पही = पहिपु । नवा =  
 नवीन । खिख खिख = चख जख । खंडिया = नाश हुआ ।

( ५ ) जवाहरों = जवाहिरात से । जोत = जेति । वालम =  
 पति । चीत = चित्त । आसक = आशिक, मोहित । भली = श्रेष्ठ ।  
 भालरी = ललाट की । जुलफ = जुल्फ । रख = जैसा । वणी रख  
 जालरी = जाल सी बन गई । वरतुल = गोल । सुधम = सूधम ।  
 कपोल = गाल । वाम रा = श्री का । तयारी = तैयार । वेह =  
 विधाता, विधि ।

( ६ ) कली = कली । भूँहाँ = भँवारे । वाँकड़ियाँह = वाँकी ।  
 इसड़ी = ऐसी । वारणै = न्यौछावर । सर = बाण । मनमथ =  
 कामदेव । गा = गया । अंजण = अंजन, कजल । सारणै = लगाने

नाक नवल्ली नारि रै, नकवेसर वखनूर ।  
 मोती ग्रहियाँ चॉच मभ्र जॉणक कीर जरूर ॥  
 जॉणक कीर जरूर महारस जॉणियो ।  
 वदन निहारै नाह सचाह बखॉणियो ॥  
 पलकाँ मिलवो पाल उपाव अनदनै ।  
 चितवै जाण चकारक पूरण चंदनै ॥ ७ ॥  
 बणियो तिल थारै वदन, नेह रसिक मननार ।  
 तिल ऊपर तिल्लोतमाँ वार दई सौ वार ॥  
 वार दई सौ वारक फेर बखॉणजै ।  
 जाहर हाटक खान जिसो मुख जॉणजै ॥  
 सो जिण चौकी दैण मनोभव साखियो ।  
 रूप नरेसुर आपक सीदी राखियो ॥ ८ ॥

से । खूबी = तारीफ । काय = कुछ भी । खतंगा = जहरीला वाण ।  
 नेही ह्वै = मोहित होकर । निरजना = ईश्वर को ।

( ७ ) नत्रछी = नवीन । नक = नाक । वखनूर = बहुत सुंदर ।  
 चॉच = चुचु, चोंच । कीर = सुवा, तोता । सचाह = इच्छा सहित ।  
 पाल = रोकती है । उपाव अनदनै = आनंद को पैदा करती है, आनंद  
 हो रहा है । चितवै = देखे ।

( ८ ) बणियो = बना हुआ है । थारै = तेरे । जाहर = प्रसिद्ध ।  
 हाटक = कंचन, मोना । जिसो = जैसा । चौकी दैण = पहरा देने को ।  
 मनोभव = कामदेव । साखियो = जमानत से, साक्षी । नरेसुर = राजा ।  
 सीदी = काले रंग का एक जाति का मनुष्य जो विश्वसनीय होता है ।



फवै ललाई विंवफल, परतख अधर प्रवाल ।  
 जपा कुसम जोड़ै जियाँ, भापै सहियाँ भाल ॥  
 भाखै सहियाँ भाल लियाँ कृसभावनै ।  
 चित पिय कोमल ताय वधावै चावनै ॥  
 महा अरुँ वचनीय जिर्कारी माधुरी ।  
 दै पिय, रसगुँ दाखि रतीही नाँ दुरी ॥ ९ ॥  
 संजम जप तप सांपरत, प्रत जुत जोग विनांग ।  
 आँखि तरच्छी ईखताँ, जीता समधा जॉण ॥  
 जीता समधा जॉण अई नव जोवनॉ ।  
 मति सूँ देह समेत उपज्जी भों मनॉ ॥  
 रंभा करै वखॉण गुहालै रूपरा ।  
 अहराँ दीजै पान अवै किण ऊपरा ॥ १० ॥  
 दुरै निहारै दंतड़ा, वादल दामणियाँह ।  
 अति ऊजल तयो आगली, की हीरा कणियाँह ॥

( ९ ) परतख = प्रत्यक्ष । अधर = होठ । प्रवाल = मूँगा । जोड़ै =  
 बराबर । जियाँ = जैसे । सहियाँ = सखियाँ । भाल = देखकर ।  
 कृसभावनै = पतलेपन को । वधावै = वधाती है । चावनै = आनंद को ।  
 अरुँ = सूक्ष्म । वचनीय = कहने योग्य । जिर्कारी = जिसकी । दाखि =  
 कह । रती = किंचित् भी । दुरी = छिपी ।

( १० ) सांपरत = प्रकट । जुत = युक्त । विनांग = तरकीब ।  
 तरच्छी = तिरछी, टेडी । ईखताँ = देखते । समधा = साधारण बात है ।  
 समेत = सहित । गुहालै = तरे । अहराँ = होठों को ।

( ११ ) दुरै = छिपी । दंतड़ा = दाँत । दामणियाँह = विजली ।

की हीरा कणियोह अलोकिक कातरी ।  
 पूछै को कथ कुंदकलीरै पांतरी ॥  
 वरणी उपमा सार विचारि विचच्छर्णा ।  
 लिया सही अवतार बतीसों लच्छर्णा ॥ ११ ॥  
 मत्र वसीकर मानजै, वाणी रस वरसंत ।  
 सरसुति वीणां प्रगट सुर कोयल लाज करंत ॥  
 कोयल लाज करंत जगावै कामनै ।  
 रीक्षावै अदभूत आतमारामनै ॥  
 काज सहो विसराय सुखेबो कीजिए ।  
 प्याला श्रवणों पूर सुधारस पीजिए ॥ १२ ॥  
 अधुराँ डसर्णाँ सूँ उदै, विमल हास दुतिवंत ।  
 सो संध्या सूँ चंद्रिका, फैली जाँय फवंत ॥  
 फैली जाँय फवंत चकोराँ चाहरी ।  
 उड़ी रज धणसार अनंत उछाहरी ॥

त्यां आगली = उनके आगे, उनके सामने । की = क्या । कांतरी = कांति की । कथ = बात । पांतरी = पंक्ति की । विचच्छर्णा = विच-  
 चर्णा ने ।

( १२ ) वसीकर = वर में करनेवाला । वाणी = बोली । सर-  
 सुति = सरस्वती । कामनै = कामदेव को । सहो = सब । सुखेबो  
 कीजिए = सुना कीजिए । पूर = भरकर, पूर्य ।

( १३ ) अधुराँ = होठ । डसर्णाँ = दाँत, दंत । उदै = प्रकट हुई ।  
 संध्यासूँ = सायंकाल से । चाहरी = जरूरतवाली । उड़ी = बिलरी,  
 फैली । धणसार = कपूर ।

विश्व सुवासित होय जिज्ञे मुख वासहूँ ।  
 मलियाचल महकंत वसंत विलासहूँ ॥ १३ ॥  
 अलक डोरि तिल चड़स वो, निरमल चिवुक निवाँण ।  
 सींचै नित माली समर, प्रेम वाग पहचाँण ॥  
 प्रेम वाग पहचाँण निरंतर पाल ही ।  
 ग्रीवा कंबु कपोत गरव्वौ गाल ही ॥  
 कंठसरी बहु क्रांति मिली मुकताहलौ ।  
 हिंडुल नौसरहार, जलूस जलाहलौ ॥ १४ ॥  
 वषत मृगासण त्रिपत विण, देखत रह पिय दीठ ।  
 तिम इंद्रासण विण त्रिपत, पियकर परसत पीठ ॥  
 पियकर परसत पीठ घणो सुख पावही ।  
 कदली पत्राकार प्रसिद्ध कहावही ॥  
 साचो पढवा पाठ सवारी सोहणो ।  
 मन मथ राजकुँवोरक पाटी मोहणो ॥ १५ ॥

( १३ ) चडस = पाना निकालने का चरस । चिवुक = ठोड़ी ।  
 निवाँण = कृप, कृया । समर = स्मर, कामदेव । ग्रीवा = गरदन ।  
 कंबु = राख । कपोत = कबूतर । गरव्वौ = गर्व को । गालही = नाश  
 करती है । कंठसरी = कंठसरी, गले में पहनने का भूषण । मुकता-  
 हलौ = मोती । हिंडुल = हिलना हुआ । जलूस = तेजस्वी । जला-  
 हलौ = कलकलाट करता हुआ ।

( १४ ) वषत = समय । मृगासण = मृगासन, मृग के चमड़े का  
 आसन । त्रिपत विण = बिना पृस हुए, बिना इच्छा पूरी हुए । दीठ =  
 दृष्टि । कदली = केला । पत्राकार = पत्ते की शकल का, पत्ते के आकार

भामणिरा सुकमार भुज, साहव गलै सुहाय ।  
 जॉण नाल जलजातरा, कामपताका काय ॥  
 कामपताका काय उदै जे अंकड़ा ।  
 राजस तजि चित रोसक सोक्याँ संकड़ा ॥  
 पतपच्छी जुग पाँण सरोरुह पल्लवाँ ।  
 नग जुत वलय अमोल दिया जे निधनवाँ ॥ १६ ॥  
 अति ऊँचा तियरै उरज, बणिया विसवा वीस ।  
 जोड़ै लागै जगत में, गिर गज कुंभ गिरीस ॥  
 गिर गज कुंभ गिरीस प्रवीणों गाविया ।  
 सुवरण वरण सुदंग कठोर सुहाविया ॥  
 सोहै अंगिया ओट हरी रँग नाज में ।  
 दुड़िया चकवा दोय सिँवाल समाज में ॥ १७ ॥

का । पढवा = पढ़ने को । सँवारी = वनाई । सोहणी = सुहावनी ।  
 पाटी = तम्ती, स्लेट ।

( १६ ) भामणिरा = स्त्री के, राधिका के । गलै = गरदन में ।  
 जॉण = मानो ( उत्प्रेक्षा-वाचक ) । नाल = कमल-तंतु । कामपताका  
 काय = कामदेव की ध्वजा का टड । उदै जे अंकड़ा = विजय के अंक  
 उदय करनेवाली । राजस = राजसी । रोस = राजरोस, राज के बडे बडे  
 वैभव । सोक्याँ = सपतियों को । संकड़ा = सकुचित । पतपच्छी = प्रति-  
 पच्छी । सरोरुह = कमल । नगजुत = रत्न सहित । निधनवाँ = निधियों ने ।

( १७ ) उरज = कुच । जोड़ै लागै = समानता करना । गिर =  
 गिरि, पर्वत । गिरीस = महादेव आ पिंड । अंगिया = कचुकी । ओट =  
 आढ में । दुड़िया = दबके हुए, छिपे हुए ।

सुच्छम रोभावलि सुखद, वरणी उक्ति विचार ।  
 सांप्रति रस सिंगार री, वेल कियो विसतार ॥  
 वेल कियो विसतार मनोभव वागवाँ ।  
 ईखे नाभि निवाँण उपाई अनुभवौं ॥  
 कटि सुच्छमता हूँत लजाँणै केहरी ।  
 हररी अणिमा सिद्धि वरावर देहरी ॥ १८ ॥  
 जंघ अलोम अनूप जुग, नाजुक पणै निवात ।  
 केलि करीकर कलभ कै, सकनकूर साखात ॥  
 सकनकूर साधात सराहैं सहचरी ।  
 काम विरंचि विमास क श्री हथसूँ करी ॥  
 जेहरि घूवर माल पगाँ मुणकै जियाँ ।  
 कुंजै वारिज पुंङ्ग वचा कलहंसियाँ ॥ १९ ॥  
 सहज ललाई सांपरत, प्रीतम प्यारी पाय ।  
 निरखे भरमै नायणी, जावक दे मिलि जाय ॥

( १८ ) सुच्छम = सूक्ष्म । सांप्रति = प्रकट में । सिंगार री =  
 शृंगार की । मनोभव = कामदेव । वागवाँ = वागवान, माली । ईखे =  
 देखकर । उपाई = पैदा की । अनुभवौं = अनुभव से ।

( १९ ) अलोम = केश-रहित । निवात = विशेष । करीकर =  
 हाथी की सूँड़ । कलभ = हाथी का वचा । सकन कूर = एक प्रकार की  
 मछली । सराहैं = प्रशंसा करती है । सहचरी = सखियाँ । काम  
 विरंचि = कामदेवरूपी ब्रह्मा । विमास = विचार करके । जेहरि = पायल,  
 पैर का एक जेवर । मुणकै = मत्तका करती है, वजती है । जियाँ =  
 जैसे । कुंजै = बोलै । वारिज पुंङ्ग = रवेत कमल । वचा = वचा ।

जावक दे मिलि जाय न जावै जाँणियो ।  
 पै मिलियो जल जाय किस्सूँ पहचाणियो ॥  
 सुख सरोरुह खंड लियौ सुख साजही ।  
 कै अरुणोदय काति रही मिलि राजही ॥ २० ॥  
 बणियाँ अणवट वीछिया, पद पल्लव छवि पूर ।  
 की कोमलता रँग कहाँ, चंपकली चक्रचूर ॥  
 चंपकली चक्रचूर टली चित चाहसूँ ।  
 नख कमलौ दल नीर क हीर निवाहसूँ ॥  
 कुसमक तारौ ब्रद हुलास हिय करै ।  
 दस तन धरिया काय सुधाधर दूजरै ॥ २१ ॥  
 कटि हदो करनाटियाँ, जघा उतकलियाँह ।  
 गो गुज्जरियाँ कुच गरब, केसाँ केरलियाँह ॥  
 केसाँ केरलियाँह बखौणन कीजही ।  
 किस्सूँ तिरोहित नारि क, कच्छ कहीजही ॥

( २० ) नायणी = नाहन । पै मिलियो जल जाय किस्सूँ पह-  
 चाणियो = दूध में मिला जल कैसे पहचाना जा सकता है । सुख =  
 सुख, लाल ।

( २१ ) अणवट, वीछिया = पैर के आसूपाय । पद पल्लव =  
 अँगुलियों में । की = क्या । चक्रचूर = पिस गई । टली = अलग हो  
 गई । काय = कै, अथवा । सुधाधर = चंद्रमा । दूजरै = द्वितीया का ।

( २२ ) कटि हदो = कमर का । करनाटियाँ = करनाटक देश की  
 स्त्रियों की । उतकलियाँह = उत्कल देश की स्त्रियों की । गो = गया ।  
 गुज्जरियाँह = गुजरात की स्त्रियों का । केरलियाँह = केरल देश की स्त्रियों

वामा भार नितंब तिलंगी वारियाँ ।  
 नहीं इसी अंग वास क सिंहलनारियाँ ॥ २२ ॥  
 जिण विध कवि मुखसूँ जिलै, वधती है वरणाँह ।  
 जुवती तन हूँता जिलह, इण विध आभरणाँह ॥  
 इण विध आभरणाँह भनूँ मुकता मिली ।  
 छक तरणाई छोल पयोनिध ज्यूँ छिली ॥  
 सो थिर राखण काज क भूपण साजिया ।  
 जड़िया रच्छया जंत्र मनोज मुनी दिया ॥ २३ ॥  
 सोहै नीलांबर सहत प्रमुदा प्रीत प्रमोण ।  
 चंपकमाला हरत चित, जुत भमरावलि जाँण ॥  
 जुत भमरावलि जाँण जिलहै तन जागणी ।  
 वादल भोँकल वीज, प्रकास विलागणी ॥  
 काय अभावस रैण प्रसंसा कीजही ।  
 दीवाली सुखदाय प्रभा दरसीजही ॥ २४ ॥

का । क्सूँ = क्या । तिरोहित = तिरहुत । वामा = स्त्री । वारियाँ =  
 स्त्रियों का । वास = सुगंध ।

( २३ ) जिण विध = जिस तरह । जिलै = आव, सुंदरता ।  
 वधती = चढती हुई । वरणाँह = वरों की, अक्षरों की । तन हूँता =  
 शरीर से । आभरणाँह = आभूषणों की । छक = वहुत । छोल = लहर ।  
 छिली = चकली, किनारा छोड़कर बाहर आई । थिर = स्थिर । राखण  
 काज = रखने के लिए । रच्छया = रक्षा । मनोज = कामदेव ।

( २४ ) नीलांबर = नीले वस्त्र । सहत = सहित । प्रमुदा = स्त्री ।  
 जुत = सहित । जिलहै = आव, सुंदरता । जागणी = जगनेवाली ।

वेलों तरवर वीटियाँ, दुति कुसुमों दरसत ।  
 निजर पिया ब्रज नाहरै, बनमय सदन वसत ॥  
 बनमय सदन वसत अलोक वणाविया ।  
 गुण सुक पिक कलहसक मोराँ गाविया ॥  
 नेह धरै जिण ठोड पधारै नायका ।  
 गहि वीणाँ सुर गान हुवै जस गायका ॥ २५ ॥  
 स्याँम नदी काँठै सघण, तरवर स्याँम तमाल ।  
 सजुत स्यामा सायधण, साहव स्याँम समाल ॥  
 साहव स्याँम समाल, सहेत महेलियाँ ।  
 रुड़ै नीर सुगंध धरा रँगरेलियाँ ॥  
 रति अनुकूल विलास घणा रलियामणों ।  
 भीषग दीसै इंद्र लिपूँ हूँ भौमणों ॥ २६ ॥

मरकल = मध्य । वीज = विजली । बिलागणी = रहनवाली । रैण = रात्रि । दोवाली = दीपावलि । प्रभा = काति । दरसीजही = दिखाई देती है ।

( २५ ) वेल = लताएँ । तरवर = वृक्ष । वीटियाँ = बेरा डालने से । दुति = काति । नाहरै = नाथ के, स्वामी के । मय = मुआफिक । सदन = घर । अलोक = अलौकिक । वणाविया = बनाए । सुक = शुक, तोता । पिक = कोयल । मोराँ = मयूर । धरै = अधिक । ठोड = स्थान पर ।

( २६ ) स्याँम नदी = यमुना । काँठै = किनारे । सघण = सघन । संजुत = संयुक्त । स्यामा = राधिका । सायधण = स्त्री । समाल = माला सहित । सहेत = सहित । रुड़ै = शब्दे । रँगरेलिया = रंग बरनाया ।



लहलहती नाचै लता, पवन सँगीती पाय ।  
 पंखावरदारी करै, रंभ विचै बग़राय ॥  
 रंभ विचै बग़राय जिल्है दल जाहराँ ।  
 नमि नमि द्रुम फल फूल करै नव छाहराँ ॥  
 आँखे मति अनुसार उकती अंकड़ा ।  
 बाँकै कही भमालु बिहारी बंकड़ा ॥ २७ ॥  
 इति भमाल ।

रलियामर्णा = सु दर । भीपग = भिखारी । दीसै = दिखाई पड़ता है ।  
 लिबूँ = लेता हूँ । हूँ = मैं । भामर्णा = बलिहारिया ।

( २७ ) सँगीता पाय = गान-विद्या सीखकर । पंखावरदारी  
 करै = पंखा हिलाने का कार्य करता है । रंभ = केला । बग़राय =  
 बनराय । जिल्है दल = पत्तों का तेज । द्रुम = वृक्ष । नवछाहराँ =  
 न्यौछावर । आँखे = लाकर । उकती = उक्ति । अंकड़ा = अक्षर । बाँकै =  
 कविराजा बाँकीदाम । भमालु = एक जाति का गीत, जिसमें प्रथम एक  
 दोहा छंद होता है, दोहे के अंतिम चरण का आगे सिद्धावलोकन  
 करके इक्कीस इक्कीस मात्राओं के चार पद रखे जाते हैं । बिहारी  
 बंकड़ा = हे बाँके बिहारी ।

‘ नोट इस ‘सुमाल’ गीत का लक्षण “रघुनाथ-रूपक” में, जो मनभाराम उर्फ मंछ कवि द्वारा रचा गया है, इस प्रकार है

“दूहै पर चंद्रायणो, धरै उलालो धार ।

गीर्ता रूप सुमाल गुण परखै मंछ बिचार ॥”

इसकी टीका में स्पष्ट इस प्रकार किया गया है प्रथम तो दोहा छंद कहै फेर चंद्रायणो कहै । दोहा की मात्रा प्रथम पद तीसरे पद में १३ और दूसरे चौथे में ११ होय । चंद्रायण की एक एक पद में २१ मात्रा होय और प्रत्येक चरण में के अंत में एक गुरु होय ऐसे चार पद होय और कु डलिया की तरह दोहा को अंतिम पद चंद्रायण का आदि में धरै । ( रघु० जीयालाल टीका, पृ० ३१ ) ।

इति सुमाल टीका समाप्त ।

## ( ४ ) अथ सुजस छतीसी

सेस हिमालय स्रंग, सुरगय हय नय पय दरस ।  
 श्र सिलोचय रंग, जय जय लंकवरीस जस ॥ १ ॥  
 हुवा जसोधन पुरस जे, इल वड मत अवदात ।  
 ब्यारी कही पुराण मेँ, व्यास तपोधन बात ॥ २ ॥  
 कवियण पौहरै करन रै, नित ले ज्यारो नाम ।  
 जिके जसोधन पुरस धन, बाँका करण विराम ॥ ३ ॥  
 निरवाहै पण आपणो, जे चाहै जस वास ।  
 भाँगण ज्याँहूता मिले, नँह जावही निरास ॥ ४ ॥

( १ ) स्रंग = श्रृंग, पहाड की चोटी । सुर = देवता । गय = हाथी । सुरगय = ऐरावत । हय = घोड़ा । नय = नदी, गंगा । पय = दूध । दरस = दृश्य । सिलोचय = पर्वत । लंकवरीस = लंका देनेवाले, रामचंद्र ।

( २ ) जसोधन = यराम्बी । इल = पृथ्वी । वड = वडे । मत = बुद्धि । अवदात = उज्वल ।

( ३ ) पौहरै = पहर । करन रै = प्रात काल । पौहरै करन रै = प्रातः-काल के समय मे । ज्यारो = जिनका । कण = पाठाँ० हरण ।

( ४ ) निरवाहै = निर्वाह करे पूर्ण करे । पण = प्रण, प्रतिज्ञा । आपणो = अपना । ज्याँहूता = जिनसे ।

ज्यों जस छत्र तणावियो, माथै जगत मन्तार ।  
जिके छत्रधर जाँग्या, सुदतारों सिगगार ॥ ५ ॥  
जस छल जागणहार, धरपुड़ त्यागणहार धिन ।  
अरुणानुज असवार, कर छाया ज्यों सिर करै ॥ ६ ॥  
लिख लिख वाँचै लोक, के सीखै चरचै किता ।  
सुखै हरण मन सोक, दातारों जस दूहड़ा ॥ ७ ॥  
देस सिंध ऊनड़ दियो, दीधो सिर जगदेव ।  
बाँका जसरै वासतै, दाता नकूँ अदेव ॥ ८ ॥

( ५ ) ज्यों = जिन्होंने । माथें = मस्तक पर । मन्तार = अदर ।  
जिके = वनको । सुदतारों = दानियों के ।

( ६ ) धरपुड़ = पृथ्वी का पृष्ठ भाग । धिन = धन्य है । अरुणा-  
नुज = गरुड । ज्यों = जिनके ।

भावार्थ — जो यश के लिये छल के समथ भी जागता है वसी पृथ्वी  
त्यागनेवाले को धन्य है । उसके ऊपर भगवान् अपने हाथों से छाया  
करते हैं ।

( ७ ) वाँचै = पढ़े । के = कितने ही । चरचै = चर्चा करे, आपस  
में बाने करे । किता = कितने ही । दूहड़ा = दोहे ।

( ८ ) ऊनड़ लाया फूलायी का रिन्तेदार था । सिंध को जय  
किया सो ही चारण को दान दे दिया । यह गीत है

“भाई एहा पूत जँण जेहा ऊनड़ जाम ।

दीधी लातों सिंधडी जो देवै इक गाम ॥”

“पाँण पटोलियो मल्लियो चारण कियो दिवाण ।

ऊनड़ मेरुहै आवियो नामूँ ही सुरताय ॥”

जगदेव पँवार—“राममाला” में इसकी कीर्ति वर्णित है । मालवे के

जस चाहै वाहै जिको, माँसाँ चूकी हड्डु ।  
अखियाताँ वाताँ वचै, जरा कालु डर छड्डु ॥ ८ ॥  
सदा करै सनमान, भीठा बोलै हँस मिलै ।  
दिए घरा धन दान, जस खाटै ठाकुर जिकै ॥ १० ॥  
सोई पुरस सुलच्छणो, सोइ ज पूत सपूत ।  
सोइज कुलरो सेहरो, ताँडै जस रथ जूत ॥ ११ ॥  
ताँत तणका गायकों, ईहग वरण उचार ।  
सुगौ नवो नित निज सुजस, साँचा ऐ सुदतार ॥ १२ ॥

वदयान्तिक का छोटा पुत्र था जिसका राज्य सन् ११४३ तक दिया है । जगदेव सिद्धराज जयसिंह का प्रधान सामंत था । बड़ा दानी और शूरवीर था । अपना शिर दान में दिया था । बड़ी विजय की थी और दान दिए थे ।

नकूँ = कुछ भी नहीं । अरेव = न देने योग्य ।

( ८ ) वाहै = नहार करना । जिको = जो । माँसाँ = मांस ।  
चूकी = चूकना । हड्डु = हड्डी । अखियाताँ = प्रसिद्ध । वाताँ = वाते ।  
वचै = वचती है । जरा = बुढ़ापा । छड्डु = छोड़कर, पाठां० चड्डु ।

( १० ) धन = पाठां० धर । घरा = पृथ्वी । खाटै = पैदा करे ।  
जिकै = जो ।

( ११ ) सुलच्छणो = अच्छे लक्षणोंवाला । सोइज = वही ।  
कुलरो = वंश का । सेहरो = सुकुट । ताँडै = हर्ष से उछलना, गर्जना  
करे । जूत = जुतकर, लगकर ।

( १२ ) ताँत = ततिका वाद्यन्त्र, सारंगी आदि । तणका = आवाज ।  
ईहग = चारण, कवि । गे = यह ।

आलस बालो मंगणौ, उर मगणौ उदार ।  
 बक उदारौ विसव मै, बालो जस विसतार ॥ १३ ॥  
 कवि पंडित जाहिर करै, मोटाँरौ जस वास ।  
 छोटाँरा जसरो हुवै, पहियाँ हूँत प्रकास ॥ १४ ॥  
 हातमताई हरख सूँ, पोपंतो पहियाँह ।  
 अमर नाम उखरो, अजै, की जादा कहियाँह ॥ १५ ॥  
 बालपणौ मैं वाजिया, जेहलरा जस ढोल ।  
 न कूँ बसावै कृपण नर, वूढा ही जस बोल ॥ १६ ॥  
 जस न हुवै धन जोड़ियाँ, धन दीधाँ जस होय ।  
 बीसलदे वीकम तयो, जग मेँ विवरो जोय ॥ १७ ॥

( १३ ) बालो = प्यारा । मगणौ = याचको को । उदार = उदार पुरुष, दानी । विसव = विश्व ।

( १४ ) मोटाँरौ = बडों का । पहियाँ = पथिक । हूँत = से ।

( १५ ) हातिमताई = यह फारस देश के ताप नगर का रहनेवाला था और यह दुखी मनुष्यों की बहुत सहायता करता था । इसके नाम पर हातिमताई नामक एक पुस्तक है जिसमें इसका हाल खूब दिया गया है । पोपतो = पालन-पोषण करता था । पहियाँह = पथिकों का । उखरो = उसका । अजै = आज तक । की = क्या । जादा = अधिक । कहियाँह = कहने से ।

( १६ ) बालपणौ = बाल्यावस्था । जेहलरा = जेहा भाराणी के । यह जेहा भाराणी कच्छ के राजा भारमल का पुत्र बड़ा दानी, पराक्रमी और यशस्वी था । नकूँ = कुछ भी नहीं । वूढा ही जस बोल = वृद्ध होने पर भी यश प्राप्त नहीं करते ।

( १७ ) बीसलदे = यह अर्धराज का पुत्र था । यह बड़ा

जाहर जस खुसबोह जुत, सुदता कुसम सुसोह ।  
 काँटों सूँ भूँडो क्रपण, वप अपजस वदबोह ॥ १८ ॥  
 क्रपणों जस भावै कठै, विधि विमुखानूँ वेद ।  
 बाँका भोजन नहै रुचै, प्यारै वप प्वर खेद ॥ १९ ॥  
 क्रपणों जस भावै कठै, गुरु विमुखाँ नूँ ग्याँन ।  
 असुरों दया न ऊपजै, चंचल चित्तों ध्याँन ॥ २० ॥  
 मैलो अत अदतार मन, रुच जस तगाँ रहै न ।  
 तन कालो विसहर तयो, कंचुक सेत सहै न ॥ २१ ॥

विद्वान् और पटित-प्रेमी था। इसने अजमेर में बड़ा भारी एक पाठ-गाला बनाई जिसके खँडहर ढाई दिन के भोजपडे के नाम से प्रसिद्ध है। यह बड़ा विजयशाली और धनशाली था। आना सागर में इसने करोंडों की सपत्ति गाड दी थी इसी से यह प्रसिद्ध है “वीसकोड वीसलदेवाली पडगी ऊँडे पाणी”। इसने चारण भाट आदि को बहुत दान नहीं दिया इससे इमकी प्रशंसा नहीं करते।

वीकम = यह विक्रमादित्य उज्जैन के चक्रवर्ती राजा अत्यंत दानी, शूर-वीर, विद्वान् और सेवत्कार हुआ है।

विवरो = विवर्ण ।

( १८ ) जाहर = प्रकट । खुसबोह = सुगंध । जुत = युक्त, सहित । सुदता = दानी । सुसोह = सुगोभित होता है, वह । काँटों सूँ = कंटकों से । भूँडो = बुरा । वप = शरीर । वदबोह = दुर्गंध ।

( १९ ) भावै = अच्छा लगता है । कठै = कर्हा । विधि = ईश्वर-कर्म । विमुखानूँ = प्रतिकूलों को, विरुद्ध रहनेवालों को । खेद = दुःख ।

( २० ) ग्याँन = ज्ञान । असुराँ = राक्षसों को । ऊपजै = उत्पन्न होती है ।

( २१ ) मैलो = मलीन । अत = अति, ज्यादा । रुच = रुचि,

पंगी गंग प्रवाह, निरमल तन कीधो नहीं ।  
चित क्यूँ राखै चाह, तिके सरग पावय तयी ॥ २२ ॥  
है संबोधन वासतै, वलु पिछाँयण वंक ।  
पिण अदतारौं नाम नँह, अमर होण इक अंक ॥ २३ ॥  
जस गाडा भरियो जुडै, जग सो करो जतन ।  
औ आभरणौं आभरण, रतनौं सिरै रतन ॥ २४ ॥  
कृपणौंरी मतवालु की, करसण खारच खेत ।  
नीर विलोयो है नहीं, दत अन रोगन हेत ॥ २५ ॥

इच्छा । तयी = की । विसहर = सर्प । तयो = का । सेत = सफेद ।  
रहै न = पाठां० नरेन । सहै न = पाठां० सदेन ।

। नोट सर्प की कञ्चुकि सफेद होती है किंतु उसका रंग काला होने  
के कारण वह उसे सहन नहीं करता है और उसे त्याग देता है । और  
यश को भी कवियों ने सफेद कहा है सो कृपण की सर्प में उत्प्रेक्षा  
की है ।

( २२ ) पंगी = कीर्ति । कीधो = किया । क्यूँ = क्यों । तिके =  
वे । सरग = स्वर्ग । पावय तयी = पाने की ।

( २३ ) वासतै = लिये । वलु = पुनः, फिर । पिछाँयण =  
पहिचानने को । पिण = परंतु । अदतारौं = सूभों का । नँह = नहीं ।

( २४ ) जुडै = इकट्ठा होना । जतन = यत्न, उपाय । औ = यह ।  
सिरै = उत्तम ।

( २५ ) मतवालु = नशा, मस्ती, रीक । की = क्या । करसण =  
कृषि, खेती । खारच = ऊसर जमीन । विलोयो = विलोडन करना ।  
दत = दान । रोगन = घी । हेत = वास्ते वा पैदा करनेवाला । यथासंख्य  
अलंकार ।



इक कपि राकस दैत इक, दूषा दोय दुजात ।  
 याँ जिम नाँम उदाररो, चिरंजीव सुखदात ॥ २६ ॥  
 मच्छरै जलजीव जिम, सबजी तराँ सदोव ।  
 अदतारौँ धन जीव इम, जस दातारौँ जीव ॥ २७ ॥  
 साँभल वित समपै नहौँ, वडकाँ तयाँ वखाँण ।  
 काहू जिका कुलीयता, वर मँभिल तू आँण ॥ २८ ॥  
 साँस छतै जीवै सकल, ऊमररै आधार ।  
 जससूँ जीवै जगत में, साँस पखै सुदतार ॥ २९ ॥  
 आठ पौर जस इंदुरी, जिण धर दुव जागंत ।  
 तिण घर सूँ अपजस तिमर, अलगा थी भागंत ॥ ३० ॥

( २६ ) कपि = हनुमान् । राकस = राक्षस, विभीषण । दैत = दैत्य ।  
 दूषा = दुग्ने । दोय = दोनों । दूषा दोय = चार । दुजात = ब्राह्मण ।  
 र्याँ = इनका । दूषा...दुजात पाठातर हिरण्य होयहु जात । र्याँ  
 पाठाँ० ज्य्याँ ।

नोट ससार मे ये सात चिरंजीव माने गये हैं—हनुमान्, विभी-  
 षण, वलि, कृपाचार्य, परशुराम, अश्वत्थामा, व्यास ।

( २७ ) मवजी = हरियाली, तरावट । सदोव = सदैव, हमेशा ।  
 तराँ = वृत्त ।

( २८ ) साँभल = सुनकर । वित = धन । समपै = देवे । वडकाँ  
 तयाँ = पृथ्वी के । वखाँण = यरा । काहू = क्या, कैसा अर्थात् वह  
 कुलीन नहौँ है ।

( २९ ) साँस = श्वास । छतै = मौजूद रहने से । पखै = अलग होकर ।

( ३० ) आठ पौर = अष्ट प्रहर । इंदुगी = चंद्रमा की । दुव =  
 च्युति, कांति । अलगा = दूर । थी = से ।

जसरी गत अदभुत जिका, सत धारियँ सुहाय ।  
 नर जीवै नरलोक में, जस अमरापुर जाय ॥ ३१ ॥  
 कुलवंती सूँ क्रीतरो, उलटो है आचार ।  
 वा न तजै घर आपरो, जग इयरो संचार ॥ ३२ ॥  
 नर विवने वा नह रहै, जग में आ रह जाय ।  
 कुलवंती सूँ क्रीतरी, उलटी गति इण भाय ॥ ३३ ॥  
 थियो सदय सुण निज थुई, टीटभ हूत कसान ।  
 उणरा बाल उवारिया, महामंत्र जस मान ॥ ३४ ॥  
 दियै पैड दातार ही, दातारै पंथ ।  
 ग्यानी पुरसॉरा किया, ग्यानी चरचै ग्रंथ ॥ ३५ ॥

( ३१ ) गत = गति । अमरापुर = स्वर्ग । सुहाय - पाठां० -  
 सुहुवाय ।

( ३२ ) क्रीतरो = कीर्तिका । उलटो - पाठां० अलै  
 ( खिलाफ ) ।

( ३३ ) नर = पति । विवने = मरने पर । वा = वह कुलवंती  
 श्री । नह रहै = नहीं रहे, सती हो जाती है । आ = यह, यश ।  
 इण भाय = इस प्रकार ।

( ३४ ) थियो = हुआ । सदय = दयावान् । थुई = स्तुति । कसान =  
 अग्नि । उणरा = उसके । बाल = बच्चे । यह कथा प्रसिद्ध है कि टीटोडी  
 के अडों को गजघंट के नीचे और विण्ली के बच्चों को दाव में भगवान्  
 ने बचाया था ।

( ३५ ) पैड = कदम । चरचै = चर्चा करे, बातें करे ।

हुवै जेम हरहंस सूँ, वासर कमल विकाम ।  
एम धरम जस ह्वै उमै, दत सूँ वॉकीदास ॥ ३६ ॥  
सुदता इण्णूँ साँभलै, अमी नजर सूँ ईख ।  
कपणारो, इण्ण मेँ कुजस, सुजस छतीसी सीख ॥ ३७ ॥  
सतो वलै जूमै सुभट, करै अथ कविराज ।  
दाता माया ऊधमै, नाम उवारण काज ॥ ३८ ॥

इति सुजस-छतीसी सम्पूर्णा ।

( ३६ ) हरहंस सूँ = सूर्य से । वासर = दिन । एम = इस तरह ।  
वमै = दोनों । दत सूँ = दान से ।

( ३७ ) सुदता = दानी । इण्णूँ = इसको । अमी = अमृत ।  
ईख = देखकर । सीख = शिक्षा ।

( ३८ ) वलै = जले । जूमै = युद्ध करे । उधमै = खर्च करे,  
दान दे ।

इति सुजस-छतीसी टीका समाप्त ।

## ( ५ ) संतोष वावनी

सोरठा

मन गज जग सर भोहि, लोभ ग्राह वस करि लियो ।  
तुरत छुडावय ताहि, होय संतोष हरि हमै ॥ १ ॥

दोहा

बंक तेज कारय वयै, निहचल तप निरदोष ।  
ग्यान मोक्ष कारय गियै, सुख कारय संतोष ॥ २ ॥  
आथ अदूट अखूट अन, प्रजा धयो सुखपोष ।  
धन बाँका ऊ भ्रंगडौ, साहिव जे संतोष ॥ ३ ॥  
सुयै पढ़ै न्ह सासतर, सेवै न्ह सतसंग ।  
सुखदायक किम साँपजै, वर संतोष अभंग ॥ ४ ॥

( १ ) मन गज = मनरूपी हाथी । जग सर = संसार-रूपी तालाब ।  
ग्राह = मच्छ । तुरत = शीघ्र ।

( २ ) बरु = बर्कदास कवि । निहचल = निश्चल, स्थिर ।  
गियै = माना जाता है ।

( ३ ) आथ = अर्थ, धन । अदूट = जो कभी समाप्त नहीं हो,  
अनंत । अखूट = जो कभी कम न होना हो । अन = अन्न । धयो =  
अधिक । सुखपोष = सुख से पाली हुई । ऊ = वह । भ्रंगडौ = गार्व,  
ग्राम । ऊ पाठा० न्ह ।

( ४ ) सासतर = शास्त्र । किम = कैसे । साँपजै = उत्पन्न होवे ।

## सोरठा

तरु संतोष तणेह, नर छाया वैठा नहीं ।  
 कलकलती किरणोह, वाँका भटकै लोभ वन ॥ ५ ॥  
 अत चिंता, अभिलाष, परहर मारग पैमरो ।  
 रे संतोषहि राख, विण चिंता अभिलाष विण ॥ ६ ॥

देहा

वाँका धीरज धरण सूँ, ह्वै नहि कुंजर हाँण ।  
 की वर वर भटका करै, कूकर अधिक कमाँण ॥ ७ ॥  
 उर नभ जितै न ऊगमै, औ संतोष अदीत ।  
 नर तिसना किसना निसा, मिटै इतै नँह भीत ॥ ८ ॥  
 प्यू प्यू लालच खार जल, सेवै दुरमत संग ।  
 वाँका अत त्यूँ त्यूँ वधै, त्रसनाँ तणी तरंग ॥ ९ ॥

( ५ ) तणेह = के । कलकलती = अत्यंत तेज । किरणोह = सूर्य की किरणों में, धूप में । वाँका .. .. वन पाठां० 'वन वन भटकै वाँकला' । वाँकला = वाँकीदास कवि ।

( ६ ) अत = अति । परहर = छोड़ो । पैमरो = प्रेम का । विण = बिना । रे . राख पाठां० रे संतोष हरि राख ।

( ७ ) वाँका = वाँकीदास । धरण सूँ = रखने से । कुंजर = हाथी । हाँण = हानि । की करै = क्या कर लेता है । भटका = भटकने से । कूकर = कुत्ता । कमाँण = कमाई ।

( ८ ) जितै = जब तक । ऊगमै = उदय होता है । औ = यह । अदीत = सूर्य । तिसना = तृष्या । किसना = कृप्या । निसा = रात्रि । इतै = इधर, ( हृदय में ) तब तक ।

( ९ ) खार = मृगतृष्या । दुरमत = खोटी बुद्धिवाला । तणी = की ।

गलो कटावै लोभ यो, लोभी काटणहार ।  
 लीजै कौनी लोभ सूँ, मिल सतोष मभार ॥ १० ॥  
 परवाही पुरसाँ तथी, मेट प्रतीत मनोह ।  
 वप ऊतरिया चढ़त विष, परवाही पवनोह ॥ ११ ॥  
 आवै धन ज्याँ, आवियाँ जिके नवी नित जोड ।  
 अदभुत गुर लालच अठै, कला सिखावै कोड ॥ १२ ॥  
 चित सूँ- आगम चिंतवै, आ मजबूत उपाध ।  
 बंक जुड़ै नँह वॉछियौ, इण कारण द्वै आध ॥ १३ ॥  
 मॉनवियाँ मन बन मँही, लागी लालच लाय ।  
 वॉका इण संतोष विण, वीजै केण बुभाय ॥ १४ ॥

( १० ) गलो = गर्दन । कानी = कली काटना, अलग हटना ।  
 मभार = मेँ, अदर ।

( ११ ) परवाही = परवा रखनेवाला, खुशामदी । पुरसाँ तथी =  
 मनुष्यों की । प्रतीत = विश्वास । मनोह = मन मेँ । वप = शरीर ।  
 परवाही = पूर्व दिशा की । पवनोह = हवा से ।

( १२ ) ज्याँ = जिनकी । आवियाँ = उत्कट इच्छा, आने से ।  
 जिके = जो । नवी = नवीन । गुर = गुरु । अठै = यहाँ ।

( १३ ) आगम = घनागम । आ = यह । उपाध = उपाधि, दुःख ।  
 वॉछियौ = इच्छित ( पाठो० वारियो ) ॥ इण = इस । आध = आधि,  
 अर्द्ध ।

( १४ ) मॉनवियाँ = मनुष्यों के । मँही = मेँ । लाय = अग्नि ।  
 वीजै = दूसरा ( पाठो० दीजै ) । केण = कौन ।

लालच री दौड़ै लहर, भवन विर्याँ धन भाल ।  
 वैठो घावर वारभो, काँधै आण कराल ॥ १५ ॥  
 गह चढिया संतोप गज, धर पड़ ज्याँनूँ धोक ।  
 चढिया ज्याँनूँ चहरजे, लालच गरधम लोक ॥ १६ ॥

सोरठा

लालच रसरै लाग, भाँखी लपटायी मधू ।  
 उडयो बलियो आग, जिणरै मुसकल जीवयो ॥ १७ ॥  
 भव दरियाव भयंद, लहराँ ऊठै लोभरी ।  
 माँहे ज्याँ मतमंद, मनख धर्याँ छूवै भरै ॥ १८ ॥

दोहा

के प्रपंच कुपिया करै, रुपिया जोडण रोक ।  
 परपीड़ा पेखै नहो, ऐ लोभीड़ा लोक ॥ १९ ॥

( १५ ) भवन...भाल. पाठां० भवन विर्याँ धन लाल । दौड़ै  
 पाठां० दीजे । भाल = देखकर । घावर = रानिश्वर । वारभो =  
 वारहवाँ । काँधै = कंधे पर । आण = आकर ।

( १६ ) गह = ग्रहण कर । धर पड़ = पृथ्वी पर गिरकर । धोक =  
 नमस्कार करना । चहरजे = निंदा करनी चाहिए ।

( १७ ) रसरै = रस के । भाँखी = मक्खी । बलियो = पटकना,  
 रखना, जल गया । आग = दूर, अलग; अग्नि । उडयो बलियो आग =  
 उड़कर जाना तो दूर रहा । जिणरै = उसके । मुसकल = कठिन ।  
 जीवयो = जीना ।

( १८ ) भव = संसार । भयंद = भयंकर । ज्याँ = जिसमें ।  
 मतमंद = भूर्ख । मनख = मनुष्य । धर्याँ = बहुत ।

( १९ ) कुपिया पाठां० रुपिया । के = कितने ही । कुपिया =

आथ धरै घर औररी, वयण इस्ट दे वीच ।  
 आ आछी न करै अठै, न दिये पाछी नीच ॥ २० ॥  
 आँखे मोती अबर सूँ, चीण फिटक चित चाय ।  
 रोहिय गिर खोजै रतन, सिंघलदीप सिधाय ॥ २१ ॥  
 जेथ वरफ बरसै जमै, परवत सिखराँ पंत ।  
 बंक सियालै लोभबस, भालै चीण भुटंत ॥ २२ ॥  
 आँखे हिलवी आदरस, वोह यमनी वोदार ।  
 हाथी भरवा हवसरा, कस्तूरी तातार ॥ २३ ॥

क्रोध करके, चुपचाप, छुपे छुपे । रुपिया = रुपये । रोक = रोकड़ी । पर-  
 पीड़ा = परदुःख । ऐ = ये ।

( २० ) आथ = अर्थ, धन । औररी = बूसरे की । इस्ट = इष्टदेव ।  
 आ = यह । आछी = अच्छी । अठै = यहाँ । पाछी = वापिस ।

( २१ ) चीण = चीन देश । फिटक = स्फटिकमणि । रोहिय  
 गिर = एक पर्वत जहाँ रत्न होते हैं । सिधाय = जाकर ।

( २२ ) जेथ = जहाँ । पंत = पंथ, मार्ग । सियालै = जाड़े का  
 मौसम, सिवालक के पहाड़ जो वर्ष से सदा ढके रहते हैं । भालै =  
 देखें । भुटंत = भूटान ।

( २३ ) आँखे = लावें । हिलवी = हलव देश का । आदरस =  
 आदर्श, दर्पण । वोह = बहुत । यमनी = यमन देश का । वोदार = इत्र ।  
 भरता = मठ भरता । हवसरा = अफ्रीका देश का । तातार = एक देश  
 का नाम जहाँ की कस्तूरी प्रसिद्ध होती है, जिसे मुश्के तातार वा  
 नाफे तातार कहते हैं ।



छाछ कवाँण खुदंग सर, समसेरों ईरान ।  
 आणै अस ऐराक सूँ, घटण धणो धन यान ॥ २४ ॥  
 धज फरकावै जीवतो, जोड़ कोड़ धन रोक ।  
 नाँखै मर उण ठौड़ नर, नाग हुवै निरमोक ॥ २५ ॥  
 मोल मगाड़ै चंद्रमण, दहण सुधंभण दाह ।  
 दाह हिप लालच दहण, जवन न थंभण जाह ॥ २६ ॥

सौरठा

आवै जो अकलीम, सात हेक सुरताँणरै ।  
 नहीँ जिक्का दे नीम, ईछै लेवा आठमी ॥ २७ ॥

( २४ ) छाछ = चाच देश । कवाँण = कमीन, घनुप ।  
 खुदंग = देश का नाम । समसेरों = तलवारें । अस = अश्व, घोड़ा ।  
 ऐराक सूँ = राक से, जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं । घटण = संग्रह  
 करने को ।

( २५ ) धज फरकावै = नगर-सेठ हो जाय । कोड़ = क्रोड ।  
 नाँखै = रखे पटकै । उण = उस । ठौड़ = जगह । निरमोक = योनि  
 छोड़कर, मनुष्य-योनि छोड़कर, निश्चय ही ।

( २६ ) मँगाड़ै = मँगावे । चंद्रमण = चंद्रकांतमणि । दहण =  
 अग्नि । सुधंभण = रोक्ने के लिये, बुझाने को । दाह = जलन ।  
 जाह = जिसका ।

( २७ ) अकलीम = वादशाहत । हेक = एक । सुरताँणरै = वाद-  
 शाह के । नीम = नींव, मजबूती, आधा । ईछै = इच्छ करे । आठमी =  
 आठवीं । यह गुलिस्ताँ के शेर का अनुवाद है ।

## दोहा

जो तू चाहै मुक्त फल, धूर्ना मन धीरच्छ ।  
 तोष मानसरोवर तठै, माल हुवै मा मच्छ ॥ २८ ॥  
 पोहचै काला पाणियाँ, हेम भरेवा हाट ।  
 छाती लालच छाकियाँ, करडी वजर कपाट ॥ २९ ॥  
 नर संपत विलसै नही, जाम्हा दुख सूँ जोड ।  
 लियो परख लालच लहर, खरी बुरी आ खोड़ ॥ ३० ॥  
 हेक रती नँह हालियो, सोनो रावण साथ ।  
 लेजावण लोभी करै, आय साथ असमाथ ॥ ३१ ॥  
 यल ऊपर लोभी अपत, नँह राखै निज नाम ।  
 यल भीतर खाटे अधम, दाटे राखै दाम ॥ ३२ ॥

( २८ ) धूर्ना = उन्मत्त । धीरच्छ = धैर्य रख । तठै = वहाँ ।  
 मा = नहीं । माल = माकह, आनंद कर ।

हे उन्मत्त मन हंस ! यदि तू मुक्ति मोतो चाहता है तो  
 संतोषरूपी मानसरोवर में हंस ही रह उसमें मच्छ मत बन ।

( २९ ) हेम = सोना । भरेवा = भरने के लिये । छाकियाँ = टूट  
 हुए, छेके हुए । करडी = कठिन, सख्त ।

( ३० ) जाम्हा = अधिक । खरी = सच्ची । आ = यह । खोड़ =  
 रोग ।

( ३१ ) हेक = एक । हालियो = चला । आय = धन, द्रव्य ।  
 असमाथ = असमर्थता ।

( ३२ ) यल = पृथ्वी । अपत = पुत्र; अप्रतिष्ठित, निर्लज्ज ।  
 खाटे = पैदा करके । दाटे = दबाकर ।

सौरठा

चढिया जे कर चाह, लालच घेड़ै ललकणै ।  
वाँका ह्वै वदराह, पड़िया दीठा पुरषड़ा ॥ ३३ ॥

दोहा

नाचै लाज निवार नित, वाँका जाण वनोक ।  
जग में भटकै स्वान जिम, लोभ तखँ वस लोक ॥ ३४ ॥  
नागलोक नरलोक की, नैह सुरलोक समाय ।  
जेथ तेथ प्राणी जलै, लालच हंदी लाय ॥ ३५ ॥  
लोभी कापड़ ढक्किया, तोपिय उरियाँ तेह ।  
है उरियाँ ही ढक्किया, जन संतोषी जेह ॥ ३६ ॥  
वायक सतगुर वैदरो, धयो करै हित घोष ।  
रै इय लालच रोगरो, सद औषद संतोष ॥ ३७ ॥

( ३३ ) चाह = इच्छा । ललकणै = कृन्ते हुए । वदराह = कुमार्ग ।  
दीठा = दिखाई पड़े ।

( ३४ ) निवार = छोड़कर । वनोक = वंदर । भटकै = डोलते  
फिरते हैं । तखँ = के ।

( ३५ ) नरलोक = पृथ्वी । जेथ = जहाँ । तेथ = तहाँ । हंदी =  
की । लाय = अग्नि ।

( ३६ ) कापड़ = कपड़े, वस्त्र । तोपिय = तो भी । उरियाँ = नगे ।  
तेह = वह । जेह = जो ।

( ३७ ) धयो = अधिक । घोष = घोषित । इय = इस । सद =  
सच्चा ।

हिये वसाई हरष सूँ, मधुसूदन महाराज ।  
नर जिणसूँ ललचै नहीं, सो त्रिभुअण्य सिरताज ॥ ३८ ॥  
गुरु प्रसाद सतोष गज, जे नर वैठा जाय ।  
जग लालच कूकर जियाँ, लाल सकै न लगाय ॥ ३९ ॥

सोरठा

जे संतोष सुमेरे, चढ़ वैठा मानव चतुर ।  
देख नवै ज्याँ देर, कुवचन सर लागै कठै ॥ ४० ॥

दोहा

सवर राख कुसमै समै, कासूँ धवर करीस ।  
खिण्य खिण्य ले जगची खवर, जवर सगत जगदीस ॥ ४१ ॥  
जग संतोष तुपार नर, वसै निरंतर वंक ।  
तियाँ लोभ श्रीपम तथी, सुपनेँ ही नँह संक ॥ ४२ ॥

( ३८ ) मधुसूदन = विष्णु । जिणसूँ = जिससे । त्रिभुअण्य = त्रिभुवन, तीनों लोक ।

( ३९ ) लाल लगाय पाठां० लाल सकै नँह लाय ।  
कूकर = कुत्ता । जियाँ = जैसे । लाल = राल, पतला थूक ।

( ४० ) देख...देर—पाठां०— देख नजर ज्याँ देर । सर—पाठां०—  
रज । देर = देकर, मारकर । सर = बाय । कठै = कहीं ।

( ४१ ) सवर = संतोष । कुसमै = बुरे समय पर । समै = अच्छे  
समय पर । कासूँ = किससे । धवर = घवराहट । करीस = करे ।  
खिण्य खिण्य = क्षण क्षण । जगची = संसार की । जवर = बलवती ।  
सगत = शक्ति ।

( ४२ ) जग पाठां० नर, नग । तुपार = ठंडक, ठंडे

सिध माधक राखै सवर, सवर तजै मतमंद ।  
सवर काज सुधरै सह, साईं सवर पसंद ॥ ४३ ॥  
जिण दिन ओ मन जाणसी, सोनो धूड सभान ।  
उण दिन सुरज ऊगसी, सोनारो सुखदान ॥ ४४ ॥  
जग थित भूठी जाणणी, मूठी भीड़ म रख ।  
माया मेवो भाडुवाँ, चंगा चाखव चख ॥ ४५ ॥  
सौरठा

दुज जंगम दुरवेस, जोगी संन्यासी जती ।  
लोभ न राखै लेस, वाँका उणनू वंदिये ॥ ४६ ॥

जल के कथ । निरंतर = लगातार । वंक = वांकीदास ।  
तिर्या = उसको । तणी = की । सुपने ही = स्वप्न में भी । संक =  
शंका ।

( ४३ ) सिध = सिद्ध पुरुष । सह = सब । साईं = मालिक,  
ईश्वर ।

( ४४ ) जिण = जिस । ओ = यह । जाणसी = जानेगा । धूड =  
धूल, मिट्टी । उण = उस । ऊगसी = उदय होगा । सोनारो = स्वर्ण का ।  
सुखदान = सुखदाई ।

( ४५ ) थित = स्थिति । मूठी = मुष्टिका । भीड़ = दवाकर ।  
म = मत । भाडुवाँ = मनुष्य । चंगा = उज्ज्वल चित्तवाले । चाखव =  
खिलावे ।

( ४६ ) जंगम पाठों में -- रंगम । दुज = द्विज, ब्राह्मण । जंगम =  
एक संप्रदाय के साधु । दुरवेस = दरवेश, फकीर । लेम = लेखमात्र,  
किंचित् भी । वाँका = वांकीदास कवि । उणनू = उसको ।

## दोहा

ज्यारै खाख विछावणो, ओढणूँ आकास ।  
 ब्रह्म पोष सतोष वित, पूरण सुख त्यों पास ॥ ४७ ॥  
 खलक मँही वै खोजणो, सुब प्रसन्न सुख संत ।  
 धार जिके सतोष धन, विण परवाह वसंत ॥ ४८ ॥  
 बाँका हरप न ब्रध्रि सूँ, हाण हुवाँ नँह सोक ।  
 हरि सतोष दियौ हिये, तिणनूँ दीध त्रिलोक ॥ ४९ ॥  
 आया जेथ प्रसन्न ह्वै, वधै धटे नँह मत्त ।  
 प्रभु राखै उण पाँखडो, सदा अमीणो सत्त ॥ ५० ॥  
 बाँका वेद पुराण विच, सायद आ छै सूत ।  
 सुख संतोष सराहियो, आपदत्त अबधूत ॥ ५१ ॥

( ४७ ) पोष--पाठां० घेव । वित--पाठां०--विन । ज्यारै =  
 जिनके । खाख = मिट्टी । ओढणूँ = ओढने को । पोष = शरण,  
 आधार । वित = धन । त्यों = उनके ।

( ४८ ) खलक... .सुख संत—पाठां० पिला केण उचखो  
 चणा सुयप रत्त सुख संत । खलक = ससार । मँही = मे, अंदर ।  
 खोजणो = तलाश करना चाहिये । सुब = पवित्र । विण = विना ।

( ४९ ) ब्रध्रि सूँ = वृद्धि से, बढ़ती से । हाण = हानि, लुकसान ।  
 तिणनूँ = उसको ।

( ५० ) मत्त पाठां० वृत्त । सत्त पाठां० चित्त । जेथ =  
 जहाँ । उण = उस । पाँखडी = पखडी । अमीणो = हमारा ।

जो आ जाय उसी में प्रसन्न रहूँ और मेरे चित्त की वृत्ति कभी  
 धटे बढे नहीं, ईश्वर मेरा मत्त हसी पखडी पर रखे ।

( ५१ ) सायद = साची । आ = यह । छै = । सूत = ऋषि का

लालच बलती लाय में, बाली बडी बलाय ।  
 बहाय धो, हूँ राजी हरिदाय ॥ ५२ ॥  
 मन संतोष प्रकासवै, वन श्रीखंड विकास ।  
 आलस उरग न आभङ्गै, तो की कहणो तास ॥ ५३ ॥  
 सा पुरपाँ संतोषिया, खौणौ जवहरपाँण ।  
 बेलौ चित्रा बेलडी, पारस सयल पखौण ॥ ५४ ॥  
 अट्टारासै अठंतरे सोजी फागण मास ।  
 सुद वेरस संतोष शुण, वरणे वाँकीदास ॥ ५५ ॥

इति संतोष वाचनी समाप्त ।

नाम । सराहियो = प्रशंसा की । आपदत्त = दत्तात्रेय महामुनि । अय-  
 धूत = जोगी, महामुनि ।

( ५२ ) बलती = जलती हुई । लाय = अग्नि । बाली = जलाश्रय ।  
 बहाय धो = बहा दो ।

( ५३ ) श्रीखंड = चंद्रन । उरग = सर्प । आभङ्गै = लिपटे नहीं ।  
 की = क्या । तास = उसका ।

( ५४ ) सा = अच्छे । खौणौ = खानों में । जवहर = जवाहिरात ।  
 बेलौ = बेल, लता । चित्रा = एक प्रकार की उत्तम बेलडी । बेलडी = बेल,  
 लता । सयल = शैल, पर्वत । पखौण = पत्थर ।

( ५५ ) अट्टारासै अठंतरे = १८७८ सवत् । वरणे = वर्णन किया ।

इति संतोषवाचनी की टीका सम्पूर्णा ।

## ( ६ ) अथ सिधराव-छतीसी

मोताहल मय छत्र सिर, मानसरोवर राय ।  
 देवी गूजरखंडरी, श्रीवहचरा सहाय ॥ १ ॥  
 कुंजर जिणरै श्रीकलस, अलहयापुर आथाँण ।  
 सो चालुक जैसिंधदे, गूजर वै सुरताँण ॥ २ ॥  
 तो चरयाँ लागै तिको, चालुक करन सुजाव ।  
 नर गरिमा महिमा लहै, साँचौ तूँ सिधराव ॥ ३ ॥

( १ ) मोताहल = मोती । मानसरोवर = जयसिंह की माता मीलनदेवी का बंधाया हुआ बड़ा तालाब वीरम गाँव के पास है । गूजरखंडरी = गुजरात देश की । श्रीवहचरा = श्रीवहूचरा एक देवी है जिनका मंदिर आवू पर है ।

( २ ) कुंजर = हाथी । जिणरै = जिसके । श्रीकलस = जयसिंह सिद्धराज के हाथी का नाम । “रासमाला” गुजराती (पृ० १५६) में इसके हाथी का नाम “यश-पटह” लिखा है । अलहयापुर = अन्हिलवाड़ा, यह जयसिंह सिद्धराज की राजधानी थी । आथाँण = स्थान । चालुक = चालुक्य क्षत्रियों की एक शाखा जो सोलंकी प्रसिद्ध है । जैसिंधदे = अन्हिलवाड़े का राजा । गूजर = गुजरात । वै = वाला, का । सुरताँण = बादशाह, सम्राट् ।

( ३ ) तिको = वह । सुजाव = पुत्र । सिधराव = अन्हिलवाड़े का राजा जिसका पूरा नाम जयसिंह सिद्धराज था । करन = कर्ण, जयसिंह का पिता ।



नगर नाम उपनाम निज, तैँ चालुक जैसीँ ग ।  
रुद्र महालय सूँ किया, घर पुड़ साँचा थीँ ग ॥ ४ ॥

सोरठा

गुडि श्रीकलस गयंद, चालुक तूँ जिग दिम चढै ।  
उय दिसरा नरयंद, सकलस आवै सामहाँ ॥ ५ ॥

देहा

रेवा सागर अमल में, आगै हो अरडीँ ग ।  
हमै सिंध सागर हठी, अपणायो तैँ भीग ॥ ६ ॥  
तैँ गज गुडियो श्रीकलस, विच दल करूँ वखाँय ।  
गिर कुल रूप सपंख गिर, जलनिधि माँकल जाँय ॥ ७ ॥  
कोकन सिर खडिया कटक, तैँ सिधराव अभंग ।  
दिन सकुचीजैँ कोकनद, कोक न कोकी सग ॥ ८ ॥

( ४ ) महालय सूँ = महादेव का मंदिर । घर पुड़ = पृथ्वी पर ।  
थीँ ग = जवरदस्त, साहसी ।

( ५ ) गुडि = चलाकर । गयंद = हाथी । उय = वल । नरयंद =  
राजा लोग । सकलस = सब कलश लेकर । सामहाँ = सम्मुख ।

( ६ ) रेवा सागर = रेवा नदी से सागर देश तक वा समुद्र तक ।  
अमल में = अधिकार में । अरडीँ ग = जवरदस्त । हमै = अब । सिंध =  
जोडे देश के सिंध नाम के राजा को जीता अथवा जयसिंह सिधराज ।  
सीँ ग = पशु वा शृंगवेरी देश दजिय मे ।

( ७ ) दल = फौज । सपंखगिर = परवाला पर्वत जैसे समुद्र मे  
ढौड़ रहा हो ( ऐसा तेरा हाथी ढौड़ता है और विजय कराता है ) ।

( ८ ) कोकन = कोंकण देश दक्षिण मे । खडिया = चलाए ।

सहियौ नँह जैसिंघदे, सज्य असज्य प्रताप ।  
 सबला दल रोक न सकै, दे कोकन तज दाप ॥ ९ ॥  
 लीधो दल परमार दल, आवू भोलोराव ।  
 गाजे जादव देवगिर, लीधो करन सुजाव ॥ १० ॥  
 जोरावर तपियो जठै, भूपत जादव भाँण ।  
 गाँजै तूँ सो देवगिर, गूजर वै सुरताँण ॥ ११ ॥  
 बींधा राधव एक सर, सात ताल इम सींग ।  
 सात देस कोकन लिया, इक प्रताप सूँ धींग ॥ १२ ॥

कटक = फौज । सकुचीजै = संकुचित होते हैं । कोकनद = कुमुदिनी ।  
 कोक = चकवा । कोकी = चकवी ( लसकर की धूलि उड़ने से दिन  
 की रात हो जाती है ) ।

( ९ ) सज्य असज्य = सजे और बिना सजे । सबला = बल-  
 वान् । दाप = गर्व ।

( १० ) भोलोराव = भोला भीम, दूसरा भीम, जो हली सोलंकी  
 वंश में बड़ा प्रतापी हुआ और जिसको भोला भीम भी कहते हैं । यह  
 सोमेश्वर और पृथ्वीराज चौहान से लड़ा था । १२३५ से १२६८ तक  
 राज्य किया था । देवगिरि = देवगिरि के यादवों को हराया । यह दक्षिण  
 में यादवों का बड़ा राज्य था ।

( ११ ) जोरावर = जवरदस्त, बलवान् । भूपत = भूपति राजा ।  
 जादव = क्षत्रियों की एक शाखा । भाँण = यादव राजा । गाँजै = नाश  
 किया वा गर्व-गजन किया । देवगिरि नगर महाराष्ट्र देश में यादव  
 राजाओं का प्रसिद्ध नगर था ।

( १२ ) बींधा = वेधन किए, छेदे । सींग = जयसिंह सिद्धराज ।  
 सात देस = कोकण देश के सात परगनेका खंड । धींग = बलवान्, प्रतापी ।

ले लच्छी मरहट्टरी, गूजर खंड अधीस ।  
 आय महालच्छी चरण, साँग नमायो सीस ॥ १३ ॥  
 कवि आखर व्यूँ करन तण, मरहट्टी महिलाव ।  
 कुच आघा ढकिया निरखि, रोघौ चालक राव ॥ १४ ॥  
 द्रविड़ कियो दहवाट तैँ, रुठै चालक राँण ।  
 पाया गूजर खंड पत, क्रतमाला केकाँण ॥ १५ ॥  
 कहिया था आगै कथन, समभक्त प्रभाकर भट्ट ।  
 साँचा कीघा साँग तैँ, अंग्र करे दहवट्ट ॥ १६ ॥  
 पह चालक धनवंत पुर, लाँठै लूट लियाह ।  
 काँठै नदी कवेरजा, खेमा खड़ा कियाह ॥ १७ ॥

( १३ ) लच्छी = लक्ष्मी । मरहट्टरी = महाराष्ट्र देश की ।  
 अधीस = स्वामी । महालच्छी = महालक्ष्मी, जयसिंह की इष्टदेवी ।

( १४ ) आखर = अक्षर । करन तण = कर्ण का पुत्र । महि-  
 लाव = स्त्रियों के । आघा = अर्द्ध । रोघौ = असन्न हुआ । चालक  
 राव = चालुक्य राजा जयसिंह सिद्धराज । ( लाट देश की स्त्रियों की  
 प्रशंसा है । )

( १५ ) दहवाट = नारा । रुठै = रुष्ट होने पर । क्रतमाला = कीर्ति  
 की विजय-माला । केकाँण = घोड़ा ।

( १६ ) आगै = पहले । प्रभाकर भट्ट = यह असिद्ध मीमांसक हुए  
 हैं जो गंकराचार्य के समकालीन हैं । अंग्र = अंग्र देश दक्षिण में,  
 जो गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में है ।

( १७ ) पह = राजा । धनवंत = मालदार, धनवान् । लाँठै =  
 जवरदस्ती । काँठै = किनारा, पास । कोल देश के पास कावेरी नदी है  
 वहाँ फौज का डेरा-किया ।

सिंधुर मदभर सिद्धरा, अखेड़ै बरधराय ।  
 तज कावेरी कमल वने, छपदाँ लीधा छांय ॥ १८ ॥  
 कावेरी जल श्रीकलस, धसियो सनमुख धार ।  
 ऐरावत किर आवियो, मंदायिणी मभार ॥ १९ ॥  
 कर सूँ कमल कवेरजा, निज सिर नाँखै नाग ।  
 पितनूँ कमलाँ पूजही, वारण मुख बड भाग ॥ २० ॥  
 राजा दूजो मूलरज, दिखणाताँ दल लोप ।  
 अडर मलैगिर आवियो, सुरपत जेम सकोप ॥ २१ ॥

( १८ ) सिंधुर = हाथी । सिद्धरा = सिद्धराज जयसिंह का ।  
 अखेड़ै = अखाड़ फेंकता है । बरधराय = सिंह, वृत्त को । कावेरी = नदी ।  
 कमल वन = वन जिसमें कमल बहुत हैं । छपदाँ = भैंरे । लीधा  
 छांय = छा लिया ।

( १९ ) किर = मानो, समान । मंदायिणी = मंदाकिनी, स्वर्ग की  
 गंगा । मभार = में, अदर ।

( २० ) कवेरजा = कावेरी नदी । नाँखै = डाले । नाग = हाथी  
 पितनूँ = पिता को, महादेव को । कमजाँ = कमलों से । वारण = हाथी  
 वारणमुख = गजानन, गणेश ।

( २१ ) दूजो = दूसरा । मूलरज = मूलराज चालुक्यों का प्रथम  
 राजा था जिसने अपने मामा सामंत सिंह चावडे को मारकर अन्हिल-  
 चाडे का राज्य लिया था । यह बड़ा वीर और भ्रतापी हुआ था । इसने  
 सं० ११८ से १०२३ तक राज्य किया । दिखणाताँ = दखिय के ।  
 दल = फौज । सुरपत = इंद्र ।

( २२ ) पैठा = घुस गए । नाग = सर्प । पयाल में = पाताल में ।  
 तर = तरे, पेड़ । नागाँ = हाथियों की । पोगर = सूँड़े । नाग = सर्प ।

पैठा नाग पथाल में, तर चंदण कर त्याग ।  
 चालुक चंदण लपटिया, नागाँ पोगर नाग ॥ २२ ॥  
 चालुकरा गज चीलमण, निज कर माँहि लियंत ।  
 मोताहल मय कुंभरै, ऊपर वार दियंत ॥ २३ ॥  
 पोगर दाँतूसल धकै, डाल वचै नँह हंड ।  
 कुंजर चालुकरा करै, खंड खंड श्रीखंड ॥ २४ ॥  
 सिंधुर गाजै सिद्धरा, आयो किर आसाढ ।  
 ऐतकियौ आसाढ नूँ, रद आसाढो चाढ ॥ २५ ॥

चंदण से सर्प तो डरकर भग गए और जयसिंह के हाथियों की सूँड़ों जो चरणों से लिपटों से ही मानों सर्प हो गए ।

( २३ ) चीलमण = सर्प की मण्डि । मोताहल = मोती । वार दियंत = न्यौछावर करके फेंक देते हैं ।

( २४ ) पोगर = सूँड । दाँतूसल = दाँत । धकै = सम्मुख । श्रीखंड = चंदन ।

( २५ ) सिंधुर = हाथी । सिद्धरा = सिद्धराज के । किर = मानों, उत्प्रेक्षावाची । ऐ = यह । तकियौ = देख लिया । रद = दाँत । आसाढो = सफेदी । चाढ = चढ़ाकर ।

भावार्थ सिद्धराज जयसिंह के हाथियों ने इस प्रकार गर्जना की कि मानो आषाढ ही आ गया हो । अब ऐसा ज्ञात होता है कि इन्होंने ( हाथियों ने ) अपने दाँतों की सफेदी चढ़ाकर अर्थात् अपने शरीर के काले रंग और अपनी गर्जना के साथ दाँतों की सफेदी मिलाकर भेदों का रूप बनाकर आषाढ को यानी आषाढ के भेदों को ( विजयार्थ ) देख लिया अर्थात् भेदों से मुकाबला किया ।

जेथ मल्लै तर मेखचा, गडै मल्लै तर मेख ।  
 जल्लै मल्लै तर ईंधणा, दल्ल चालकरो देख ॥ २६ ॥  
 सेख सैख आगौ अरज, केरलनाथ करंत ।  
 आवण नहँ दीजै अठै, गूजर वै वल्लवंत ॥ २७ ॥  
 भूप जड्डीवै सुगट मळ, रोहण गिर उतपत्त ।  
 निस दीपग प्रतिनिध रतन, प्रभा अपूरव भत्त ॥ २८ ॥  
 कुंभाथल मोताहल्लां, भरिया वप गिर भांत ।  
 चंद्रवरण गज रतन मै, वंगड वणिया दांत ॥ २९ ॥  
 अलियल सहज सुवास वस, रहै निकट दिन रात ।  
 हिमकर वदनी हंस गत, जुवती पदमण जात ॥ ३० ॥

( २६ ) जेथ = जहाँ । मल्लै = मलय, चंदन । तर = तरु, पेड़ ।  
 मेखचा = मेखठोका, भारी हथौड़ा लकड़ी का । जल्लै = जलता है ।  
 ईंधणा = ईंधण ।

( २७ ) सेख = उस समय का कोई मुसलमान । राजा वा बाद-  
 शाह । केरलनाथ = दक्षिण में केरल देश का राजा । अठै = यहाँ पर ।  
 गूजर वै = गुजरात के पति ।

( २८ ) मळ = अदर । रोहणगिर = एक पर्वत । उतपत्त = उत्पन्न,  
 हुई वस्तु, रत्न । भत्त = भाँति ।

( २९ ) कुंभाथल = कुंभस्थल । मोताहल्लां = मोती । वप = वपु,  
 शरीर । भाँति = भाँति, तरह । वंगड = बंध जो दाँतों पर हाथी के  
 ( न फटने के लिये ) लगाते हैं ।

( ३० ) अलियल = भैंरे । हिमकर = चंद्रमा । गत = गति,  
 यात्रा । जात = जाति ।

राजा सिंधल दीपर, तोनूँ दीध प्रसंग ।  
 खितपुड़ गूजर खंडरा, सिंध वधे तैँ सींग ॥ ३१ ॥  
 पूताँ जायाँ कवण गुण, अवगुण कवण धियाँह ।  
 जावा न दियाँ प्रगट जग, सिंधल सिंध जियाँह ॥ ३२ ॥

( ३१ ) प्रसंग = जवरदस्त । खितपुड़ = ( खिति-पट ) पृथ्वीतल ।  
 सींग = बहादुरी, हीमला ।

भावार्थ यहाँ ३०वें और ३१वें दोहे का एक साथ भावार्थ लगेगा ) । पश्मिनी जाति की युवती को, जिसका मुख चंद्रमा के सदृश है और चाल हंस की सी है और जिसकी स्वाभाविक शरीर की गंध से और रात-दिन उसके पास रहते हैं, सिंधल द्रौप के राजा ने तुम्हको जवरदस्त समझकर दिया । हे सिद्धराज, जैसे जैसे विजयार्थ तू आगे बढ़ता है वैसे वैसे गुजरात की भूमि और तेरा हौसला बढ़ता जाता है ।

( ३२ ) पूताँ = पुत्र । कवण = कौन । धियाँह = पुत्रियाँ ।  
 जियाँह = उन्होंने, पुत्रियों ने ।

भावार्थ संसार के अधिकांश भाग में यह रीति है कि पुत्र होने पर मनुष्य खुशी मनाते हैं और पुत्री होने पर विरोध प्रसन्न नहीं होते । इस दोहे में उसी का उल्लेख किया गया है ।

पुत्रों के जन्म लेने से तो क्या गुण उत्पन्न होते हैं ( जो प्रसन्नता होती है ) और पुत्रियों के जन्म से क्या अवगुण उत्पन्न होते हैं ( जो विरोध प्रसन्न नहीं होती ) ? देखो पुत्रियों से यह बड़ा भारी लाभ हुआ कि उन्होंने सिद्धराज जयसिंह को सिंधल में जाने नहीं दिया यह बात सब संसार जानता है । ( सिंधल के राजा ने जयसिंह को अपनी पुत्री व्याही थी यहाँ उसी की तरफ इशारा है । )

भीमा धुनी पयस्वनी, गोदावरी गहीर ।  
 ऊँत भद्रा पूरणा, किसना निरमल नीर ॥ ३३ ॥  
 सिंध ताम्रपरणी प्रमुख, नदियाँ ते नरनाह ।  
 हैवर ढोया भीम हंर, गिराँ उतंगों गाह ॥ ३४ ॥  
 देव वेद विद्या दिखण, पूज दुर्जोरा पाव ।  
 दीधा दान अनेक विध, सविनय तैँ सिधराव ॥ ३५ ॥  
 देव हरी हर दिखण में, पूजै परम प्रवीत ।  
 कीधो आँछो करनरा, जनम सफल जगजीत ॥ ३६ ॥  
 अनमी कंध नमाविया, नाणाँ भरै नरेस ।  
 जीतो तूँ जैसिंधदे, दिखण तणाँ सौ देस ॥ ३७ ॥

( ३३ ) भीमा = नदी का नाम । धुनी = नदी । पयस्वनी = पानी-वाली ( नदी ) । गहीर = गहरी । ऊँत भद्रा = तुंगभद्रा नदी दक्षिण में । किसना = कृष्णा दक्षिण की नदी ।

( ३४ ) सिंध = सिंध नदी वा समुद्र । ताम्रपरणी = दक्षिण की नदी । हैवर = घोड़ा । ढोया = चलाया वा ले गया । उतंगों = ऊँचे । गाह = खूँदकर, चढ़कर । इन नदियों के नामों से वे देश संकेत से जानने चाहिएँ जो इन नदियों के पास वा बीच में है, यथा गोदावरी कृष्णा के बीच में आंध्र देश ।

( ३५-३६ ) इन दोहों में विद्वानों को दान व सम्मान करने का वर्णन है । करनरा = कर्णराज के पुत्र ( जयसिंह ) के ।

( ३७ ) अनमी = बिना नए हुए, बिना झुके हुए । नमाविया = झुके, नमो । नाणाँ = रुपये । भरै = दिए । दिखण तणाँ = दक्षिण के ।



खेह नाँख हँवर खुराँ, अनराजाँ उतवंग ।  
अलहणपुर आयो अडर, औ सिधराव अभंग ॥ ३८ ॥  
सोमेश्वर अवतार सुण, सोलुंकी सिधराव ।  
कही छतीसी वंक्र कवि, जिणरै अरघ जड़ाव ॥ ३९ ॥

इति सिधराव-छतीसी सम्पूर्णा ।

( ३८ ) खेह = धूलि । नाँख = डालकर । खुराँ = घोडे के सुम  
अन = अन्य । उतवंग = सिर पर । अभंग = सही सलामत, विजयी  
होकर ।

( ३९ ) सोमेश्वर = महादेव, शिव ।

इति सिधराव छतीसी टीका सम्पूर्णा ।

## ( ७ ) अथ वचन विवेक पच्चोसी

ऊतरती वाताँ करै, औराँरी अणवंध ।  
 निज मुख पाँणी ऊतरै, ईखै नँह मद अंध ॥ १ ॥  
 बैरीरी ही वत्तडो, करै नहोँ कुलवंत ।  
 वात बुरी मिल मित्ररी, कुल बाहिरा करंत ॥ २ ॥  
 काचड़गाराँ ऊपरा, राम तणी है रीस ।  
 काचड़गारा कूड़चा, वगडै विसवावीस ॥ ३ ॥  
 जग मेँ नर हलका जिकै, बोलै हलका बोल ।  
 आप तणै मुख आपरो, मूरख करदे भोल ॥ ४ ॥  
 पर निंदा आठूँ पहर, चाटै बिपरी चाठ ।  
 क्यों नँह तू प्राणी करै, पंच रतनरो पाठ ॥ ५ ॥

( १ ) ऊतरती = खोटी । औराँरी = दूसरों की । अणवंध = वेशु-  
 मार । पाँणी ऊतरै = लजाना, शर्मिँदा होना । ईखै = देखना । इसै-  
 पाठा० इकै ।

( २ ) वत्तडो = वात । मित्ररी = मित्र की । कुलबाहिरा =  
 नीच कुलवाले ।

( ३ ) काचड़ = बुराई । गाराँ = वाला । काचड़गारा = बुराई  
 करनेवाला । रीस = क्रोध । कूड़चा = बुराई से । वगडै = बिगड़ते हैं ।  
 विसवावीस = निश्चय ही ।

( ४ ) हलका = नीच । आपरो = अपना । भोल = मूर्ख, कीमत ।

( ५ ) आठूँ पहर = अष्ट पहर, रात-दिन । बिपरी = बिष की,  
 जहर की । चाठ = खाद्य वस्तु ।

पैँड पैँड ब्याँरा पिसण, त्प्यारों कड़वा वैँण ।  
 जग जानूँ देखै जलै, नहिँ घाटों है नैँण ॥ ६ ॥  
 जोय वंक जलजात ज्योँ, संजुत संत असंत ।  
 चड़वानल कड़वा वचन, जल भलपण जाणंत ॥ ७ ॥  
 चँदणा लपटै मिणधरण, रीमै साँभल राग ।  
 पिण मुख माँभल जहर तै, निदवियो जग नाग ॥ ८ ॥  
 चाँका विष फल नीपजै, ज्यो विष तररी डाल ।  
 यूँ दुरजणरी जीभड़ी, रैकारो कै गाल ॥ ९ ॥  
 जीकारो अमृत व्युँही, भावै जगनूँ भाल ।  
 है रैकारो आक पथ, गरल वरावर गाल ॥ १० ॥

( ६ ) पैँड पैँड = पग पग पर । पिसण = दुष्ट, शत्रु । त्प्यारों = उनके । जानूँ = तिनको । घाटाँ = प्रसन्न ।

( ७ ) जलजात = कमल, जल और उसमें उत्पन्न वस्तु ।

( ८ ) मिण = मणि । मिणधरण = सर्प । रीमै = प्रसन्न होता है । साँभल = सुनकर । राग = गायन । पिण = तो भी । माँभल = में, अंदर । निदवियो = निंदा की ।

( ९ ) नीपजै = पैटा होते हैं । तररी = वृक्ष की । डाल = टहनी । यूँ = इस तरह । जीभड़ी = जिह्वा में । रैकारो = ओछे वचन, नीच वचन । कै = अथवा । गाल = गाली गलौज ।

( १० ) जीकारो = 'जी' शब्द लगाकर बोलना; जैसे- रामजी, रतनूँजी आदि । भावै = अच्छा लगता है । जगनूँ = संसार को । भाल = देखो । आक = आकडा ( वृक्ष-विशेष ) । पथ = दूध । गरल = जहर ।

टीकारो मालक तिको, जीकारो मुख जास ।  
 उणसूँ एँकारो किसूँ, मुख रैकारो हास ॥ ११ ॥  
 सजन वाँधै पालु सिर, सीसा छकिर्याँ गालु ।  
 डुरजण फोड़ै गालु दै, प्रीत सरोवर पालु ॥ १२ ॥  
 गालु न ऊठै गूमड़ो, ऊठै भालु अकत्थ ।  
 जियनूँ सज्जन वैण जल, सांत करण समरत्थ ॥ १३ ॥

### सौरठा

विष मुख जास बसंत, भीठा बोलौँ हँस मरै ।  
 उरग तणो कर अंत, भोर प्रकासै एह मत ॥ १४ ॥

( ११ ) टीकारो = टीकाई, प्रधान, सर्वोच्च । मालक = मालिक, पति । तिको = उसको, वह । जास = जिसके । उणसूँ = उससे । एँकारो = ऐंकार, मनोमालिन्य । रैकारो = ओछे वचन, जैसे रतन्या, भगवान्या आदि । हास = हँसी में ।

( १२ ) पालु = बध । छकिर्याँ = खूब, यथेच्छ । गालु = गलाकर, तपाकर भरना ।

( १३ ) ऊठै = उत्पन्न होना । गूमड़ो = फोड़ा । भालु = क्रोधाग्नि, जलन । अकत्थ = अकथनीय, बहुत भारी । जियनूँ = जिसके लिये । वैण = वचन । सांत = शांत ।

( १४ ) जास = जिसके । बोलौँ = वचनों से । हँस मरै = हँसकर मर जाते हैं वा लज्जित हो जाते हैं । उरग = सर्प । तणो = का । एह = यह । मत = बात, वदोहरण ।

गाल लुगायाँ गावही, नर मुख उचत न गाल ।  
 अमल गाल मनवार कर, का सुभ वचन उगाल ॥ १५ ॥  
 आद अंत दुय अंक, नाँम जिका विन नीड रो ।  
 वात भली आ वंक, राख दूर निज रसण सूँ ॥ १६ ॥  
 करण घाव पर कालजै, जीभ प्रतख जमडाढ़ ।  
 जास्की द्वै ता जीभ सूँ, कड़वो वैण न काढ़ ॥ १७ ॥  
 जीकारो अनमुख जुड़ै, आ जगनूँ अभिलाख ।  
 जीकारो दो जगतनूँ, रैकारो मत राख ॥ १८ ॥  
 ताल वाल दीजै नहर, मनखाँ फूलौं माल ।  
 बलदाँ दीजै नाल घी, पण नँह दीजै गाल ॥ १९ ॥

( १५ ) लुगायाँ = खिंचायाँ उचत = उचित, ठीक । अमल = अफीम ।  
 गाल = गलाकर । मनवार = निहोरा, खातिरी । उगाल = निकाल ।

( १६ ) नीड = घोसला । घोसले को खगालय भी कहते  
 हैं जिसके आदि अंत के अक्षर जाने से 'गाल' रह जाता है । रसण =  
 रसना, जीभ ।

( १७ ) पर = दूसरों के । कालजै = हृदय पर । प्रतख = प्रत्यक्ष ।  
 जमडाढ़ = यमदण्डा, गहरा घाव करनेवाली कालरूप कटारी ।  
 जास्की = अधिक । स = मत, नहीं । काढ़ = निकाल ।

( १८ ) अनमुख = अन्यमुख, दूसरों के मुँह से । जुड़ै = प्रयोग  
 में आवे, बोलने में आवे । अभिलाख = इच्छा ।

( १९ ) ताल = तालाब । वाल दीजै = मोड़ दीजिए । मानखाँ =  
 मनुष्यों को । बलदाँ = बल्लों को । नाल = वाँस की नली से ।  
 घी = घृत ।

राम नाम चंगो रतन, सो मुनिराजाँ माल ।  
पिल बाँधो बाधै गलै, गलै, म बाँधो गाल ॥ २० ॥  
राखो आगौ रसगरै, राधव नाम रसाल ।  
मुख माँभल आँखो मती, गिणै अबक ज्यूँ गाल ॥ २१ ॥  
जीकारो वतलाव जग, जस जग हूँत न जाय ।  
जीहा साबल चाल तू, काबल बाल कहाय ॥ २२ ॥  
पडै खरच नाँखा प्रगट, जीमण मीठै जोय ।  
बाँका मीठै बोलणै, नाँखा खरच न होय ॥ २३ ॥  
पंखी बोलै मोर की, मीठा जग मोहंत ।  
जन मीठा बोला जिके, क्यूँ जग बस न करंत ॥ २४ ॥  
पारख कीधी पंडितौ, सरब मिले संताँह ।  
ज्यारै जीभ भलाइयाँ, त्यारै भाग भलाँह ॥ २५ ॥

( २० ) पिल = जवरदस्ती । बाधै = सम्पूर्ण, तमाम । म = मत, नहीं ।

( २१ ) माँभल = मध्य, बीच में । आँखो = लावो । मती = मत, नहीं । अबक = अकरंथ्य ।

( २२ ) वतलाव = बोला । जीहा = जीभ से । साबल = ठीक ठीक । काबल = बुरे वचन, गाली आदि । बाल = जलाओ । कहाय = कहने को ।

( २३ ) नाँखा = रूपये । जीमण = ज्यानार, दावत ।

( २४ ) मीठा बोला = मीठे बोलनेवाले । जिके = जो ।

( २५ ) पारख = परीक्षा । ज्यारै = जिनके । त्यारै = उनके । भाग = भाग्य, तकदीर ।

जठै तठै इण जगत में, जीकारो श्रीकार ।  
वालो जसरा बायकाँ, तूकारो तनसार ॥ २६ ॥  
राखी जाया राजव्याँ, सहजाँहूँ बलिहार ।  
तूकारो तारीफियाँ, बरसो सोना धार ॥ २७ ॥  
कुवचन मुख कहणो नहीं, सुवचन कहणो सुछ ।  
वचन विवेक पचीसिका, इम आखै अविछ ॥ २८ ॥

इति वचन विवेक पचीसी संपूर्ण ।

( २६ ) जठै = जहाँ । तठै = वहाँ । श्रीकार = श्रेष्ठ । वालो =  
प्यारा । बायकाँ = वचनों में । तनसार = तन को छेदनेवाला, “तूकारो”  
शब्द का विशेषण है । तनसार पाठां० ततसार ।

( २७ ) जाया = पैदा किया । राजव्याँ = राजपुरुषों को । सह  
जाँहूँ = स्वभाव को ।

( २८ ) इम = इस प्रकार । आखै = कहते हैं ।

इति वचनविवेक-पचीसी टीका संपूर्ण ।

## ( ८ ) अथ कृष्ण-पञ्चीसी

माहव सूम मिलाव मत, औड़ा वरों हिसाव ।  
 के हल्लर फल्लर करै, पावै कल्लर राव ॥ १ ॥  
 अदतारों घर ऊख रस, न्ह कारण मिसठाँण ।  
 मन कारण मिस ठाँणरो, जठै भूख रस जाण ॥ २ ॥  
 ऊख गिरी घर ऊपरै, यल खाँडाँमय आब ।  
 तूषाँ मीठम होय तो, सूवाँ होय सबाव ॥ ३ ॥

( १ ) माहव = माधव, हे कृष्ण । औड़ा = ऐसे । के = कई प्रकार से । हल्लर फल्लर करे = टालमटोल करते हैं । कल्लर = खट्टी और पतली । राव = रावड़ी; एक प्रकार का पेय पदार्थ जो बाजरा, गेहूँ आदि से बनाया जाता है । पाठा० ( M\* ) माहव सूम मिलाव मत, आडा घरा असवाव । ( S† ) माहव सूम मिलाव मत, आयो घर असवाह । पावै . राव पाठा० पावै कल्लर राह ।

( २ ) अदतारा = सूमों के । ऊख = ईख, लीठा । जठै = जहाँ । भूख रस जाण = भूख भी रस के समान है । अदतारा पाठा० ( S ) अदतारो । मन पाठा० - ( S ) इण । रस = पाठा० - ( S ) माँ ।

( ३ ) यल = इला, पृथ्वी । खाँडाँमय = शर्करामय । आब = पानी । सबाव = पुण्य । ऊख.. . ऊपरै पाठा० - ( M ) उरग गरी घर ऊपरा, ( S ) उर धररी घर ऊपरा । यल.. .आब पाठा० . ( M )

\* ( M ) ऐसा चिह्न है वहाँ वा० मुरारिदानजी की पुस्तक का पा० है ।  
 † ( S ) यह चिह्न जहाँ है वहाँ सीतारामजी की पुस्तक का पाठ है ।



अदता टाणों ऊपरै, नाणों खरचै नाँहि ।  
 हाथ वसै निरधन हुवाँ, माँखी ज्यों जग माँहि ॥ ४ ॥  
 सावण भास सुहावणो, लागै झड जल लूँम ।  
 उण दिन ही आसव तणी, सोरभ नँह ले सूँम ॥ ५ ॥  
 हुवै मुवाँ विन सुकत नँह, मै विन हुवै प्रीति ।  
 सुघा पियाँ विन असरपद, ह्वै न दियाँ विन क्रीत ॥ ६ ॥  
 भूपत भणकाराह, जसरा जिके न जाँ लिया ।  
 ताँ ताँ तणकाराह, गाणाँ क्योँ गरवीजिया ॥ ७ ॥

तल खार्डा महिताव, ( S ) तल खाडा मही ताव । तूर्वा. तो  
 पाठा०— ( M ) तू वा भीठ महोल तो, ( S ) सूवा भीठम होय तो ।  
 ( ४ ) टाणाँ = विवाहादि उत्सव । नाणाँ = रुपया पैसा । वसै =  
 घिसते है, मजते है । हाथ . हुवाँ पाठा० ( S ) हाथ पसारे  
 धन छुवो ।

( ५ ) लागै झड जल लूँम = खूब वर्षा होती है । आसव = बढ़िया  
 शराव । सोरभ = सुगंधि । लागै .. लूँम पाठा०— ( S ) लागै कडजा  
 लूँम । सोरभ सूँम पाठा० ( S ) सुरभ न लागू सूँव ।

( ६ ) मुवाँ विन = मरे विना । सुकत = सुफि । मै = भय, डर ।  
 क्रीत = कीर्ति । मुवाँ—पाठा० ( S ) गुणाँ । ह्वै न पाठा०—( S )  
 केण ।

( ७ ) भणकाराह = भणकारे, कान मे शब्द पड़ना । जसरा =  
 यरा के । जिके = जो । जाँ = जिन्होंने । ताँताँ तणकाराह = ताँत के  
 वाद्ययन्त्र, सारंगी आदि । गाणाँ = गायन । गरवीजिया = गर्व करते हैं ।

भावार्थ जिन राजाओं ने यग के गवट नहीं सुने, उनका सारंगी  
 आदि वाद्ययन्त्रों से गर्व करना वृथा है क्योंकि उनका वश कोई भी नहीं

उत्तर भीठा आखरों, नीपण खारै साव ।  
 सीलोही बन जालवै, उत्तर हंदो बाव ॥ ८ ॥  
 कल में बुधवंता करै, साँपड विमल शरीर ।  
 पाँण न मूढ़ पखालही, नदी बहंतै नीर ॥ ९ ॥  
 जोईजै निज धर दियो, पर धर दियो निकाज ।  
 आपस में हम ऊपरै, सब कूँ जस सज साज ॥ १० ॥  
 उत्तर नूँ खाली कहै, उर ज्याँ बड़ो अंधेर ।  
 उत्तर दिसा सुभेर है, उत्तर माँहि कुबेर ॥ ११ ॥  
 जस थहरै तो जीभ में, कृपा हूँत बिधि कीध ।  
 मँहरे तो मृगसाँग में, पैठो बान पसीध ॥ १२ ॥

करता है। जसरा लिया। पाठा० (M) जसरा जिके न जालियाँ।

(S) जसरा जिके न जाँणिया। गाणाँ.....गरवीजिया-पाठा०

(M) गीणउ कू गजीया, (S) गीणत कूँ गरवीजिया।

(८) आखरों=अक्षरों से। नीपण=निपुण, चतुर। खारे=खारा। साव=स्वाद, जायका। सीलोही=शीतल ही। हंदो=का। बाव=बायु। नीपण=पाठा० (S) नापिण।

(९) कल=संसार। साँपड=स्नान करके। पाण=पाणि, हाथ। पखालही=घोते है। कल=पाठा० (M) कुल।

(१०) जोईजै=जलाना चाहिए, देखना चाहिए। निकाज=व्यर्थ। जोईजै—पाठा० (S) जो दूजे। हम पाठा० (S) हम। सब ..साज पाठा० (S) सूँर्मा कुजस समाज।

(११) ज्याँ=जिनके। उत्तर कहै पाठा० (M) उत्तर नँह खखि यों कहै, (S) उत्तर उखोली कहै। ज्याँ पाठा० (S) ज्यो।

(१२) थहरै ठहरता है। तो=तेरे। मँहरे=मेरे। मृग-

अंगण्य संगण्य आवियाँ, उत्तर वेगो अप्प ।  
 एह महा ध्रम आतमा, ऐ तीरथ ऐ तप्प ॥ १३ ॥  
 दरव किसी ओपम दियाँ, तो सूँ है सह कोय ।  
 तो सारीखे तुहिज तू, अवर न दूजो कोय ॥ १४ ॥  
 सोना हंडी लंक सुण, जग तरसै सह जीव ।  
 जगत पंथ कोय न गिणै, गत थारी हयग्रीव ॥ १५ ॥  
 करूँ अरज कमलालया, त्यागाँ बार न तुज्ज ।  
 जिण दिन ओ जग छौँडस्याँ, उण दिन तोसूँ कज्ज ॥ १६ ॥

सौंग में प्राचीन काल में शिकार करने में धनुष की कोटि में मृगों के साँगों को डलकाकर उनको जीता पकड़ लेते थे । कृपण को यश मिलना ऐसा ही कठिन है ।

( १३ ) अंगण्य = अंगान, धर में । संगण्य = मिखारी । वेगो = जल्दी । अप्प = दे ।

( १४ ) दरव = द्रव्य । ओपम = उपमा । सारीखे = समान, बराबर । अवर = अन्य, और । दरव पाठां० (S) देख । है पाठां० (S) कै ।

( १५ ) जगत पंथ = समार का मार्ग, जन्म मृत्यु । गत = गति । थारी = तुम्हारी । हयग्रीव = हे ईश्वर । जगत... गिणै—पाठां० (S) जग पत कोय जाके नहीं ।

( १६ ) कमलालया = लक्ष्मी । बार = अभी । ओ = यह । छौँडस्याँ = छोड़ेंगे । उण = वस । करूँ पाठां० (S) कस । त्यागाँ... तुज्ज पाठां० (M) भाँगाँ मार मनज्ज, (S) भाँगाँ मार मचज्ज । छौँडस्याँ पाठां० (M) छेड़सी, (S) चंडसी ।

गरक धणै जल गूदडा, ले तन सूँ लपटाय ।  
 अत्थ वत्थ भर काडवै, मदिर जलताँ भाय ॥ १७ ॥  
 मूल वरण उणईसभो, इक बीस भय आन ।  
 साधहु विध तुम जतन सो, बिस्तुक भो भगवान ॥ १८ ॥  
 रहो वीवरे रामरस, अनरथ घणो अलंत ॥  
 याहिज है ध्रम आतमा, ऐ तीरथ ऐ तंत ॥ १९ ॥  
 कवियण रसण कपाणरो, साजौ हुवै न घाव ।  
 वीह न इसी बलायरो, सूँमाँ कठण सुभाव ॥ २० ॥

( १७ ) गरक = गरक, दूषा हुआ । धणै = बहुत । गूदडा =  
 चख । अत्थ = धन । वत्थ भर = बाध भरके, दोनो हाथों से पकड़कर ।  
 काडवै = निकालते हैं । गरक . गूदडा पाठा० (S) गरकू धणो ज  
 गूदडा । अत्थ . काडवै—पाठा० (M) असप बसप भरकै दियो,  
 (S) अस्य . स्य भरक दीयो ।

( १८ ) मूल . उणईसभो = उन्नीसवाँ वर्ष 'ध' है । इक  
 आन = एक बीसवाँ वर्ष "न" सहित रखो, अर्थात् धन को । साधहु =  
 साधना करो । विध = विधि सहित । भो = भव, महादेव ।  
 इक . आन पाठा० (S) इक नीर समवीय आन । साधहु .  
 भगवान । साधहु विध तुम जठ मसु, विष्णु कयो नभ बान ।

( १९ ) वीवरे = अवलव करके । रामरस = भक्ति; नमक ।  
 ( यहाँ श्लेष है । )

( २० ) रसण = जिह्वा । कपाणरो = तरवार का । साजौ =  
 ठीक, दुस्त । वीह = भय । इसी = ऐसी । बलायरो = आफत का,  
 आपत्ति का । कठण = कठिन । बलायरो (पाठा०) — (S) बलाचरो ।

पापी पाप न कीजिए, न्यारा रहिए आप ।  
 करणी आपो आपरी, कुण बेटो कुण बाप ॥ २१ ॥  
 रोमै विपधर राग सूँ, किया न जिणरै कान ।  
 कान किया क्यों क्रपणरै, सुणै न क्यों ही ज्ञान ॥ २२ ॥  
 जवन मृतक तन क्रपण धन अनकण कीडी आँण ।  
 धरती में ऊँडो धरै, जाण भलो निज जाण ॥ २३ ॥  
 की है तूँवा बाँधियाँ, सूँमाँ हंके सत्य ।  
 नर इवै बहती नदी, सायर तरण समत्य ॥ २४ ॥  
 दान धणो उत्तर दिये, हँ ते वित सत हार ।  
 मुँहडो ले उण भिनखरो, भोभर भीतर भार ॥ २५ ॥

( २१ ) न्यारा = अलग । करणी = कर्म । कुण = कौन । पापी-  
पाठा०-(S) पापा ।

( २२ ) विपधर = सर्प । क्योंही = कुछ ही । रोमै सूँ  
पाठा० (S) राके विधधर राग सूँ । क्यों पाठा०-(S) सूँ । ज्ञान-  
पाठा० (S) दान ।

( २३ ) जवन = यवन, मुसलमान । अन = अन्न । ऊँडो = गहरा ।  
रुपण पाठा० (S) रपण । ऊँडो-पाठा० (S) ऊँचो ।

( २४ ) सूँमाँ = कजूभों के । हके = चलना । सत्य = साथ ।  
समत्य = बलवान् । हँ -- पाठा० (M) कह, (S) कह । हंके  
पाठा० (M) हूँ । भत्य पाठा० (M) समत्य । इवै  
पाठा० (M) होवै ।

( २५ ) वित = वित्त, धन । मुँहडो = मुख । भिनखरो = मनुष्य  
का । भोभर = भोभल, चून्हे की गरम मिट्टी । भार = भाड़ । तें

लुल डाली तर लोभरै, भूलै रहिया भूल ।  
 देणो दान कबूल नैह, कपण्य भरण कबूल ॥ २६ ॥  
 सारौ अदतारौ मँही, आछो पडदा पोस ।  
 मुँह न दिखावै मंगण्यो, देणो उत्तर दोस ॥ २७ ॥  
 देणौ उत्तर कविजण्यो, सुवरण अरथ सनेह ।  
 सुकवि सूँम सम दाखिए, नहो तफावज रेह ॥ २८ ॥

पाठा० (M) तो । वित पाठां० (M) बिन । मुहडो ले उण

पाठां० (M) मुखडी लै उण । भोभर पाठां० (M) भोवर ।

भावार्थ धन के होते हुए भी अपने सत्य को छोड़कर जो मनुष्य  
 दान में खाली उत्तर ही देता है उस मनुष्य का मुख भाड़ की भोभल  
 में देना चाहिए ।

( २६ ) लुल = नमी हुई, झुकी हुई । डाली = टहनी । तर =  
 तब, वृद्ध । लुल . लोभरे पाठां० (M) लल डाली कर लोभरे,  
 (S) लला ठला कर लो भले । भूलै भूल पाठां० (S) कूलै  
 रहिया कूल ।

( २७ ) सारौ = सब । आछो = अच्छा ।

( २८ ) सुवरण = स्वर्ण, अच्छे वर्ण । अरथ = लिये । दाखिए =  
 कहिए । तफावज = फर्क । रेह = रेखा । देणो . कविजण्यो पाठां०—  
 (S) उत्तर दिये कवियण्यो । सुकवि.. दाखिये पाठां० (M) सुकवि  
 सूँम दाखिया, (S) सुकवि सूँव मम दाखिया ।

भावार्थ श्रेष्ठ कवि और सूँम में रेखा मात्र भी फर्क नहीं है,  
 क्योंकि सुकवि तो श्रेष्ठ वर्णों की प्रीति के कारण कवियों को प्रश्न  
 का उत्तर देता है और कजूस धन की प्रीति के कारण खाली उत्तर  
 देता है ।

सृष्टै मन वाँको सदा, अरज करै अविच्छ ।  
वारै लइवा जावयो, देह दर्ई मा पुछ ॥ २६ ॥

इति कृपण-पञ्चीसी समाप्त ।

( २६ ) वाको = कविराजा वाँकीदामजी । वारै = उनके, कञ्चुसों  
के । लइवा = लेने के लिये । दर्ई = हे ईश्वर । मन पाठां०  
(M) मन । वारै . जावयो—पाठां०- (M) वार लई भाजावयो,  
(S) वार लई माँ जावयो । मा पाठां० (M) मा ।  
इति कृपण-पञ्चीसी टीका सम्पूर्ण ।

## ( ६ ) अथ हमरोट-छतोसी

दोहा

सहर बसायो सूँमरै, ऊमर कोट कराय ।  
 कहजे ऊमर कोट तै, सोढाँ लोधो आय ॥ १ ॥  
 ऊमर हंदो दूसरो, हूँतो नाम हमीर ।  
 तै हमरोट कहावही, सुषकर नीर समीर ॥ २ ॥  
 सेरसाह दिल्ली तषत, वैठो बल निज बाह ।  
 उमराँगै जद आवियो, सरण हमाऊ साह ॥ ३ ॥  
 जठै अकवर जनमियो, जाँगैँ दुहुँ वै राह ।  
 हुवो हिंद अकलीम मैँ, साहिब साहाँसाह ॥ ४ ॥

( १ ) बसायो = आवाट किया । सूँमरै = एक जाति का नाम है जो मुसलमान हो गई । कोट = किला, शहरपनाह ॥ कहजे - कहा जाता है । तै = तिससे । सोढाँ = पँवार चत्रियों की एक शाखा । लोधो = ले लिया । आय = आकर ।

( २ ) हंदो = का । हूँतो = था । तै = तिससे । हमरोट = हमीरकोट का अपभ्रंश । सुषकर = शराम देनेवाले । नीर समीर = जल-वायु ।

( ३ ) बल निज बाह = अपनी भुजाओं के बल से । उमराँगै = ऊमरकोट । सरण = शरणागत । हमाऊ = हुमायूँ ।

( ४ ) जठै = जहाँ, ऊमरकोट में । जनमियो = पैदा हुआ । दुहुँ वै राह = हिंदू मुसलमान । अकलीम = बादशाहत । साहिब = मालिक । साहाँसाह = बादशाहों के बादशाह ।



सोढाँ ऊमरकोटराँ, सिर कटियाँ समसेर ।  
 वाहं हणिया वैरहर, बाँका भारथ वेर ॥ ५ ॥  
 एक एक सूँ आगला, राँयाँ ऊमरकोट ।  
 प्रगट हुवा परमार वै, माँणीगर मनमोट ॥ ६ ॥  
 जस दस दिस औपीजिकाँ, लोपी नहँ कुल-लाज ।  
 दिया हजारौं हेक दिन, धाट तणौं धजराज ॥ ७ ॥  
 राँयाँ ऊमरकोटरा, गया जमारो जीत ।  
 ज्याँरा मंगल धवल में, गवरीजै जसगीत ॥ ८ ॥  
 लोक जठै रको नहीं, नहँ संको पर थाट ।  
 सोढाँ जस ढंको घुरै, पाधर वंको धाट ॥ ९ ॥

( ५ ) ऊमरकोटरा = ऊमरकोट के । सिर = मस्तक । कटियाँ =  
 कटे हुए । समसेर = तलवार । वाहं = चलाकर । हणिया = मारे ।  
 वैरहर = शत्रुता रखनेवालों को । बाँका = टेढ़े या कवि बाँकीदास कहता  
 है । भारथ = युद्ध । वेर = समय ।

( ६ ) आगला = अग्रगण्य । प्रगट = प्रकट । हुवा = हुए ।  
 परमार = पँवार-प्रमार क्षत्रियों में एक शाखा है, सोढे उनकी उपशाखा  
 है । वै = वो । माँणीगर = वैभव को भोगनेवाले दानी । मनमोट =  
 बड़े मन वाले ।

( ७ ) जस = सुयश । दस दिस = दसों दिशाएँ । औपी =  
 शोभायमान हुई । तणौं = के । धजराज = धोडे ।

( ८ ) ज्याँरा = जिनके । मंगल = मांगलिक गान । धवल  
 में = महलों में । गवरीजै = गाए जाते हैं । जसगीत = सुयश  
 के गीत ।

( ९ ) रको = कोई भी दरिद्र नहीं है । संको = सकुचाना, कुटना ।

घर घर में धीणाँ घणाँ, घर घर घूमै माट ।  
 राग रंग रलियावणो, धरपुड़ माँझल घाट ॥ १० ॥  
 की ईराँ ऐराक की, किस्सूँ केच मकराँण ।  
 पेत तुरंगाँ घाट जिम, बाँका घाट बघाँण ॥ ११ ॥  
 हंस जँहीँ हालंदियाँ, घाटेचियाँ तियाँह ।  
 कनक लता कठियाँणियाँ, जोड़ै नँहीँ जियाँह ॥ १२ ॥  
 धन उमराँणो घाटघर, पदमणियाँ विण पार ।  
 सह नारी सीकोतरी, धरती सिंध धिकार ॥ १३ ॥

पर घाट = दूसरे की संपत्ति को देखकर । डको घुरै = नकारे बजते हैं ।  
 पाघर बको घाट = घाट का जिला जमीन पर बड़ा जवरा है ।

( १० ) धीणाँ = गाय, भैंस, बकरी, भेड़ । घूमै माट = मही  
 बिलोया जाता है । रलियावणो = सुहावना । धरपुड़ = पृथ्वी के  
 खड । माँझल = में । घाट = ऊमरकोट का जिला ।

( ११ ) की = क्या । ईराँ = ईरान । किस्सूँ = क्या । पेत तुरंगाँ =  
 घोड़ों के पैदा होने की जगह । घाट जिम = ऊमरकोट का जिला  
 जैसा । बाँका = कवि बाँकीदासजी कहते हैं । घाट = ऊमरकोट का  
 जिला ही है ।

( १२ ) जँहीँ = जैसी । हालदियाँ = चलनेवाली । घाटेचियाँ =  
 घाट की । तियाँह = स्त्रियों । कनक = सुवर्ण । लता = बेल ।  
 कठियाँणियाँ = काठियावाड़ की । जोड़ै = बराबर । जियाँह =  
 जिनके ।

( १३ ) धन = धन्य । उमराँणो = ऊमरकोट । घाटघर =  
 घाट जिले की पृथ्वी । पदमणियाँ = पद्मिनी स्त्रियाँ । विण पार =  
 अपार ।

पूरो सुष हमरोट पुर, लोक न जाँयें डंड ।  
 छोलों जल लावो छिल्लै, बड़लागा ब्रह्मंड ॥ १४ ॥  
 ज्यां दीहाँ सिवराज सुत, राँणो राँयाँमाल ।  
 ज्यां दीहाँ जोवण जिसो, उमराँणो जगढाल ॥ १५ ॥  
 राव कलारी वार में, ईडर नगर अनूप ।  
 वारै राँयाँमालरै, उमराँणो इण रूप ॥ १६ ॥  
 घाट सुरंगो गोरियाँ, आदू कहवत एह ।  
 पदमणियाँ हमरोट ह्वै, राव म संसो रेह ॥ १७ ॥  
 लागीं कुसुम सरीस वप, ज्याँरै पडै षरोट ।  
 हद नाजक हिरण्यपियाँ, है माँकल हमरोट ॥ १८ ॥

( १४ ) हमरोट = हमीरकोट, ऊमरकोट । लावो = ऊमरकोट के तालाब का नाम है । बड = बट या बरगद का वृक्ष ।

( १५ ) ज्यां दीहाँ = जिन दिनों में । राँयाँमाल = रायमल । जोवण जिसो = देखने जैसा । उमराँणो = ऊमरकोट । जगढाल = जगत् की रक्षा करनेवाला ।

( १६ ) राव कलारी = रावजी कलाजी के । वार में = समय में । वारै राँयाँमालरै = रायमल के समय में ।

( १७ ) सुरंगो = सुशोभित । गोरियाँ = स्त्रियों से । आदू = प्राचीनी । कहवत = कहावत । पदमणियाँ हमरोट ह्वै = ऊमरकोट में पद्मिनियाँ होती हैं । राव म संसो रेह = इसमें रेखा मात्र भी संशय-भ्रम मत रख ।

( १८ ) लागीं = लगने से । कुसुम सरीस = सिरस का पुष्प । वप = सरीर । ज्याँरै = जिनके । पडै परोट = लोही निकलकर खरूट जम जाता है । हद नाजक = नाजुकता में पूर्ण । हिरण्यपियाँ = मृग-नयनियाँ । माँकल = मैं । हमरोट = ऊमरकोट ।

एकै दिट्टाँ दिट्ट सह, महलाँ चंपक माल ।  
 कर सूँ लीधी तोड़ किया, रूप रूँष इक डाल ॥ १९ ॥  
 एकै पदमण वास्तै, सींधल गयो रतत्र ।  
 ऊमरकोट न आवियो, मतो कियो की मत्र ॥ २० ॥  
 लोयण चंचल श्रवण लग, लौवा बेणी डंड ।  
 महकै सहज सुवास बप, किर लायो श्रीषड ॥ २१ ॥  
 आषडियाँ अणियालियाँ, काजल रेष कियोह ।  
 बीभलियाँ भावंदियाँ, लाज सनेह लियाँह ॥ २२ ॥  
 भूषाँ पंजरीटाँ भृगाँ, सवर हतक सराँह ।  
 जैतवार ज्याँरा, नयण सरोरुहाँ सुथराँह ॥ २३ ॥

( १९ ) एकै = एक । दिट्टाँ = देखने से । दिट्ट = देखी । सह = सब । महलाँ = स्त्रियाँ । कर सूँ = हाथ से । लीधी = लिया । किया = किसने । रूप रूँष = रूप के वृत्त की । इक डाल = एक डाली ।

( २० ) एकै = एक । पदमण वास्तै = पद्मिनी के लिये । सींधल = लंका, सिंधल द्वीप में । गयो = गया । रतत्र = चितौड़ का महाराजा रतनसिंह । मतो = विचार । की = क्या । मत्र = अपने मन में ।

( २१ ) लोयण = नेत्र । श्रवण लग = कानों तक । लौवा = लंबे । बेणी डंड = आड़ी-चोटी । सहज = स्वाभाविक । सुवास = सुगन्धि । बप = शरीर । किर = मानों । लायो = लगाया । श्रीषड = चंदन ।

( २२ ) आषडियाँ = आँखें, नेत्र । अणियालियाँ = तीखी-चुभने-वाली । बीभलियाँ = चिह्नों, रसिकों को । भावंदियाँ = अच्छी लगने-वाली । लाज = लज्जा । सनेह = स्नेह, प्रीति ।

( २३ ) भूषाँ = मङ्गलियाँ । पंजरीटाँ = खज पत्ती, कौडिया, एक जाति की चिडिया । भृगाँ = हरियों को । सवर हतक सराँह =

महलौं पूनम चंद मुष, आठम चंद ललाट ।  
केहर कड़ ज्यू षीण कड़, अरूँ अमरावल घाट ॥ २४ ॥  
कोमल राता पातला, अधर जिर्कारा ईष ।  
अमिलापै पीवण अमर, सुधा जाम दे सीष ॥ २५ ॥  
दौत दमंकै अहर दुत, जाँण चमंकै वीज ।  
ज्यारी धुनि मधुरी सुणै, रहै तपोधन रीज ॥ २६ ॥  
स्वच्छ कपोल महेलियाँ, मरु छवि नकूँ मियाँह ।  
पात समर सोनी किया, जर जाफरी तयाँह ॥ २७ ॥

कामदेव के बाणों से वायल हुए हुएों को । जैतवार = जीतनेवाले । ज्यारी = जिनके । नयण = नेत्र । सरोरुहा = कमलों को । सुधरुह = अच्छे ।

( २४ ) महला = स्त्रियाँ । पूनमचंद = पूर्णिमा का चंद्रमा । मुष = मुँह । आठम = अष्टमी । चद = चंद्रमा । केहर = सिंह, शेर । कड़ = कटि, कमर । पीण = शीण, पतली । अरूँ = अँवारे । अमरावल = अँवरों की पंक्ति की । घाट = तरह ।

( २५ ) राता = लाल, रक्त । पातला = पतले । अधर = होट । जिर्कारा = जिनके । ईष = देखकर । अमिलापै = इच्छा करे । पीवण = पीने के लिये । अमर = देवता । सुधा = अमृत । जाम = प्याला । दे सीष = अलग हटाकर ।

( २६ ) अहर = दिन । दुत = कांति । ज्यारी = जिनकी । तपोधन = महात्मा । रीज = प्रसन्न ।

( २७ ) कपोल = गाल । महेलियाँ = स्त्रियों के । मरु छवि = छवि में । नकूँ मियाँह = कुछ भी कमी नहीं है । पात समर सोनी किया = मानों कामदेव-रूपी सुनार ( स्वर्णकार ) ने पत्तें बनाए हैं । जर जाफरी = स्वर्ण और केसर । तयाँह = के ।

अंग अंग मभ ऊफणै, जोवन आठो जाम ।

त्याँ हंदी तसबीररो, कलम हुवै नँह काम ॥ २८ ॥

सह आभरणाँ सोभही, आवण भूण तियाँह ।

जाँणै फूलाँ भार जुत, हाटक बेलडियाँह ॥ २९ ॥

चोरे पूनम चंद ये, काढी काँमणियाँह ।

काय सुधर अरु काय धर\*, देषो दाँमणियाँह ॥ ३० ॥

घूँघट पोलाँदी नँहो, बोलदी पिक बैण ।

गजगत जावै गोरियाँ, लाँबै सर जल्लैण ॥ ३१ ॥

( २८ ) मभ = में । ऊफणै = उमलै । जोवन = यौवन । आठो जाम = आठ प्रहर, दिन रात । त्याँहं दी = तिनकी ।

( २९ ) सह आभरणाँ = गहनों के सहित । आवण भूण = बहुत से, कुँड के कुँड । तियाँह = स्त्रियाँ । फूलाँ = पुष्पो के । भार जुत = बोझ संयुक्त । हाटक = सोने की, स्वर्ण की । बेलडियाँह = बेल, बेलि, लता ।

( ३० ) चीरे पूनमचंद = पूर्णिमा के चंद्रमा को चीरकर । ये = इन । काढी = निकाली । काँमणियाँ = स्त्रियों को । काय सुधर अरु काय धर, कै सीधल कै घाट धर = क्या घरों में और क्या उस पृथ्वी पर या तो सिँधल द्वीप लका से या घाट के जिले में । देखो दाँमणियाँह = विजली की सी चमक-दमकवाली स्त्रियाँ देखो ।

☆ पाठांतर "कै सीधल कै घाट धर ।"

( ३१ ) पोलाँदी नँहो = अलग नहीं हटाती । बोलदी = बोलती है । पिक बैण = कोकिल के से मधुर वचन । गजगत = हाथी की सी चाल से । लाँबै सर = लाँबा नामक तालाव पर । जल्लैण = पानी भरने को ।

दै वररी तज देहली, पणघट साँमाँ पाय ।  
 वाजै धूधर पार बिण, सोर सरोवर जाय ॥ ३२ ॥  
 सरवर लाँवै संचरै, पणघट पदमणियाँह ।  
 किर गिरवाँण कँवारियाँ, वप सोभा बणियाँह ॥ ३३ ॥  
 ज्याँरा द्रग कच जीतियाँ, सोह पकज साँवाल ।  
 पड़ही लहराँ मिस पगाँ, त्याँ हंदाँ ओताल ॥ ३४ ॥  
 कमल जिसा सुकुमार कर, चूड़ा रँगिया चोल ।  
 लाँवै जल लहराँ कलस, भरै हिलोल हिलोल ॥ ३५ ॥  
 नवा सुरंगा ओढियाँ, चगा भीणाँ चीर ।  
 भरही हेमवरत्रियाँ, दूधवरन्नाँ नीर ॥ ३६ ॥  
 नष सूँ लै चोटी लगै, तन छवि माँह तरंत ।  
 लुल मिल केहरलंकियाँ, लाँवै नीर भरंत ॥ ३७ ॥

( ३२ ) पणघट = पनघट, पानी भरने का स्थान । पाय = पग ।

( ३३ ) संचरै = आती है । गिरवाँण कँवारियाँ = देवकुमारी ।  
वप = सररीर ।

( ३४ ) ज्याँरा = जिनके । द्रग = नेत्र । कच = केश । सोह =  
सोभा, सव । पंकज = कमल । सीवाल = सिवार, जल के भाग, काँई  
इत्यादि । त्याँ हंदा = उनके । ओताल = जल्दी से ।

( ३५ ) जिसा = जैसे । सुकुमार = कोमल । कर = हाथ ।

( ३६ ) नवा = नवीन । चगा = अच्छे । भीणाँ = महीन, वारीक  
पोत के । चीर = वध । भरही = भरती है । हेमवरत्रियाँ = स्वर्ण की  
सी काँतिवाली । दूधवरन्ना नीर = दूध जैसा पानी ।

( ३७ ) लै = लेकर । चोटी लगै = चोटी तक । माँह = से ।

लावै सर पाँथी भरै, गौरी गात अनूप ।  
 ज्याँ आगै पाँथी भरै, रंभ अलोकिक रूप ॥ ३८ ॥  
 हेमकलस कुच जुग हिए, नीर कलस सिर लेइ ॥  
 पणघट हूँताँ बाहुडै, कलस दुहूँ कर देइ ॥ ३९ ॥  
 मँहाँ छतीसाँ दूहड़ाँ, है बरखन हमरोट ॥  
 आ हमरोट-छतीसिका, मिनष सुणै मनभोट ॥ ४० ॥

इति हमरोट-छतीसी समाप्त ।

तरत = तिरता है । लुल = मुककर । मिल् = इकट्ठी होकर । केहर-  
 लंकिर्याँ = सिंह जैसी कमरवाली ।

( ३८ ) गात = सरीर । अनूप = जिसको उपमान लग सके ।  
 ज्याँ आगै = जिनके अगाड़ी । रंभ = रंभा, इंद्र की अप्सरा ।

( ३९ ) हेमकलस = स्वर्ण के कुंभ । कुच जुग = दोनों स्तन ।  
 नीर कलस = पानी का बरतन । पणघट हूँताँ = पानी भरकर लाने के  
 स्थान से । बाहुडै = वापिस आती है । कलस दुहूँ कर देइ = दोनों  
 कलसों पर हाथ रखकर ।

( ४० ) मँहाँ = मैं । छतीसाँ = ३६ । दूहड़ाँ = दोहों । बरखन =  
 वर्णन । हमरोट = हमीरकोट, ऊमरकोट का । मिनष = मनुष्य ।  
 मनभोट = बड़े मनवाला, शौकीन, दातार ।

इति हमरोट-छतीसी टीका समाप्त ।



## स्फुट संग्रह ( टीका सहित )

( बाबादासजी के गीत आदि फुटकर छंदों का संग्रह तथा टीका )

### दोहा

माळी श्रीधर माँह, पोष सुजल द्रुम पालियो ।

जिणरो जस किम जाय, अत वण वूठो ही अजा\* ॥ १ ॥

शब्दार्थ द्रुम = पेड़ । जिणरो = जिसका । किम = कैसे । वण =  
वन, मेह । वूठो = वरसने से । अजा = अर्जुनसिंह ।

नोट एक दिन कविराजाजी महाराज मानसिंहजी के साथ हाथी  
पर चढ़े हुए जा रहे थे । उस समय रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंहजी  
मिळे जिनके पास कविराजाजी अपनी सामान्य दशा में जाया करते  
थे और उन्होंने पूछा कि आपको उन गाँवों का वृत्तांत भी स्मरण है  
वा नहीं ? उस समय बाबादासजी ने एक दोहा पढ़कर कृतजता  
प्रकट की ।

• यह सोरठा पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली के भाभिनी-विलास के  
३०वें श्लोक का आशय है

“तोयैरल्पैरपि कल्याया भीमभानौ निदाघे

मालाकार व्यरचि भवता या तरोरस्य पुष्टि ॥

सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृष्येन वारं

धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन” ॥ ३० ॥

## १ गीत

प्रथम नेह भीनो महाक्रोध भीनो पछै,  
 लाभ चमरी समर भोक लागै ।  
 रायकँवरी वरी जेण वागै रसिक,  
 वरी घड़ कँवारी तेण वागै ॥ १ ॥  
 हुवे मंगल धमल दमंगल वीरहक,  
 रंग तूठो कमध जंग रूठो ।  
 सधय बूठो कुसुम वोह जिणमोड़ सिर,  
 विषम उण मोड़ सिर लोह बूठो ॥ २ ॥  
 करण अखियात चढियो भलाँ कालभी,  
 निवाहण थयण भुज वाँधिया नेत ।  
 पँवारों सदन वरमाल सूँ पूजियो,  
 खलों किरमाल सूँ पूजियो खेत ॥ ३ ॥  
 सूर बाहर चढे चारण्यँ सुरहरी,  
 इतै जस जितै गिरनार आवू ।  
 बिहँड खल खींचियाँ तणा दल विभाड़े,  
 पोढियो सेज रण भौम "पावू" ॥ ४ ॥ २ ॥  
 शब्दार्थ भीनो = भोगा हुआ । चमरी = चँवरी, विवाह-मंडप ।  
 भोक = भौका । वरी = वरण किया, व्याही । जेण = जिस । वागै =  
 विवाह के वस्त्र । घड़ = फौज । कँवारी = बिना लड़ी हुई, अनव्याही ।  
 धमल = धमाल राग । दमंगल = युद्ध की चिनगारियाँ । वीरहक =  
 वीरों का हल्ला । तूठो = प्रसन्न हुआ । कमध = राठौड । रूठो =

क्रुद्ध हुआ। सधण = बहुत। वृद्धो = बरसा। घोह = प्रवाह।  
 मोड़ = बंधरा, मुकुट। अयिधान = प्रसिद्धि। भर्त्ता = श्रेष्ठ। कालुमी =  
 धोड़ी का नाम। निवाहण = निर्वाह करने दो। नेत = भाला,  
 कांकण डोरंडे। पँवारो = पन्नार राजपूतो के। यर्त्ता = शत्रुओं ने।  
 वाहर = सहायता। सुरहरी = गाण्डू। विहेड = नाश कर। खींचिया =  
 खींची राजपूत। दल = सेना। विभाडे = बखेरेना, तितर-धितर  
 करना। पोडियो = सो गया। भोम = भूमि।

भावार्थ प्रथम तो प्रेमरस में भीगा फिर क्रुद्ध हुआ और  
 जिसे विवाह-मंडप में ( भविरी के समय ) युद्ध का कौका लगा उस  
 रसिक ने जिम विवाह-वस्त्र से ( जामे से ) राजकन्या का पाणिग्रहण  
 किया था उसी वस्त्र से ताजा फौज से युद्ध किया ॥ १ ॥

जिस समय मंगल गीत हो रहे थे उस ही समय युद्ध की चिनगारी  
 उठी और वीर पुरुषों ने युद्ध के लिये हल्ला किया। जिस समय वह  
 राठौड वीर विवाह-रंग में प्रसन्न हो रहा था उसी समय उसे युद्ध  
 के लिये क्रुद्ध होना पड़ा। जिसके मोड़ ( सेहरे वा मुकुट ) पर खूब  
 फूलों की वर्षा हुई थी उसी मोड़ पर तलवारें चलीं ॥ २ ॥

जो परभागों के महलों में वरमाला से पूजा गया था वही शत्रुओं  
 की तलवारों से पूजा गया। उस वीर ने अपनी प्रसिद्धि करने को  
 और अपने वस्त्रों का निर्वाह करने को हाथ में भाला लेकर श्रेष्ठ  
 “कालुमी” धोड़ी पर सवारी की ॥ ३ ॥

उस शूरवीर ने चारणों की गायों की सहायता के लिये चढ़ाई की।  
 उसका यश तब तक रहेगा जब तक गिरनार और आवू रहेगें। “पावू”

वीर ने खींचियों की फौज को नाश करके भगा दिया और स्वयं रणभूमि में अपनी शय्या लगा ली ॥ ४ ॥

नोट अनुमान से संवत् १३६० विक्रमी के आसपास राजपूताने में “पावूजी” नामक राठोर क्षत्रिय बड़े वीर हुए हैं जो अत्यंत धार्मिक और सदाचारशील थे। इनके गुणों की प्रशंसा सम्पूर्ण राजपूताने में फैली हुई है और वे देवता करके माने और पूजे जाते हैं। “पावूजी” मारवाड़ के “कोलूमढ” नामक ग्राम के निवासी थे। उन्हीं का समकालीन “जिनराज” नामक खींची क्षत्रिय “जायल” ग्राम में राज्य करता था। उसी ग्राम में “देवलजी”, नामक एक चारण्यी निवास करती थी जो देवी की अवतार थीं। इन “देवलजी” के पास देवताशसंभूत और विशेष गुणों से सम्पन्न एक ‘कालिमी’ नामक घोड़ी थी। जिनराज खींची ने “देवलजी” से यह कालिमी घोड़ी मांगी परन्तु उन्होंने देने से इनकार कर दिया। अतः वह दुष्ट “जिनराज” इनसे शत्रुता रखने लगा और उनके गो आदि धन हरण करके नाना प्रकार से कष्ट देने की चेष्टा करने लगा। इससे “देवलजी” अपनी संपूर्ण संपत्ति लेकर “पावूजी” के निकटस्थ स्थान में आ गईं। “कालिमी” घोड़ी की प्रशंसा सुनकर “पावूजी” ने उसे मांगा तब “देवलजी” ने कहा कि जो वीर मेरे गो आदि धन की रक्षा के निमित्त अपना मस्तक देने को तैयार हो उसी को यह घोड़ी दी जा सकती है। “पावूजी” के इस बात को स्वीकार करने पर देवलजी ने उन्हें घोड़ी दे दी। जब “जिनराज” ने यह बात सुनी तो वह दोनों पर आग बबूला हो गया। और उसने कई दफा “देवलजी” की गाएँ हरण करने की चेष्टा की, किन्तु “पावूजी” के प्रताप से वह

वृत्तकार्य नहीं हो सका। इससे "पावूजी" के मुखों की प्रशंसा बहुत दूर दूर तक फैल गई थी। उमे सुनकर "मिथ" देश के "उमरकोट" नगर के "सोटा" क्षत्रिय की कन्या ने उन्हे चरने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उर्मा के अनुसार कन्या के पिता ने "पावूजी" के पास विवाह का संदेश भेजा। इसके उत्तर में "पावूजी" ने कहा कि मैं अपना मस्तक "देवलजी" को दे चुना हूँ, मेरे साथ विवाह करने से क्या लाभ होगा? जब कन्या ने यह बात सुनी तो उभने कहा कि केवल "पावूजी" की पक्षी कहलाना चाहती हूँ और कुछ नहीं। अतः मैं विवाह स्थिर हो गया। "पावूजी", उमरकोट विवाहार्थ प्रस्थान करने के पूर्व "देवलजी" से, आज्ञा लेने आया। उन्होंने आज्ञा देकर कहा कि यदि "जिनराज" पीछे से हमारी गाँव धरेगा तो उस समय तुम्हें यह "कालिमी" धोड़ी सूचना देगी। तब तुम अपने प्रतिज्ञानुसार सन्धि चले आना; डेर मत करना।

पावूजी "जो आज्ञा" कहकर बिदा हुआ। उनके जाने के पञ्चाव पापी "जिनराज" देवलजी की गाँव धेरकर ले चला। "देवलजी" ने अपनी देवी शक्ति से "पावूजी" का स्मरण किया। उर्सा चले वह "कालिमी" धोड़ी हिनहिनाने और नाचने-कूदने लगी। इन समय उमरकोट में "पावूजी" की भावरी (फेरे) हो रही थी। धोड़ी की आवाज सुनते ही उन्होंने कहा—“वस, मुझे संदेश आ गया है; मैं एक चय भी नहीं ठहर सकता।” यह कहकर वे, भावरी का कार्य बिना पूर्ण किये ही, धोड़ी पर जा चढ़े और वहाँ आकर खींचियों से भिड गए। बड़ी वीरता से लड़कर "देवलजी" की गाँवों को छुड़ाकर ले आए

किंतु एक बछड़ा नहीं आया था और पीछे रह गया था। उसे फिर लेने को गए। वहीं वे बड़ी वीरता से लड़कर काम आ गए। सोढी राजकन्या ने भी, जिसका पाणिग्रहण मात्र हुआ था, सती होकर अपने धर्म का निर्वाह किया। धन्य है यह भारत-भूमि ! जहाँ पर “पावूजी” सरीखे निजधर्म निभानेवाले दृढप्रतिज्ञ क्षत्रिय और “सोढीजी” जैसी क्षत्राणियाँ जन्म लेती हैं। ऐसे ही वीर पुरुषों और स्त्रियों से इस पवित्र भारत-भूमि की अखिल संसार में उज्वल कीर्ति-पताका फहरा रही है।

( स्व० ठा० भूरसिंहजी के “विविध संग्रह” से )

## २ गीत

बस राखो जीभ कहै इम बाँको कड़वा बोल्याँ प्रभत किसी ।  
लोह तथी तरवार न लागै, जीभ तथी तरवार जिसी ॥ १ ॥  
भारी अगै उगैरा भारत, हेकण जीभ प्रताप हुवा ।  
मन मिलियोडा तिकाँ माढवाँ, जीभ करै खिय माँह जुवा ॥ २ ॥  
मैला भिनख बचनरै माथै, बात बणाय करै विस्तार ।  
बैठ सभा विच मूँडा बारै, बचन काढयो बहुत विचार ॥ ३ ॥  
मन मे फेर धण्णीरी माला, पकड़ै नँह जमदूत पलो ।  
मिलै नहोँ बक्या सूँ माया, भाया कम बोलयो भलो ॥४॥३॥

शब्दार्थ प्रभत = प्रशंसा, शावाशी । अगै = पूर्वकाल में, अतीत में । उगैरा = वगैरह । भारत = युद्ध । हेकण = एक । मिलियोडा = मिले हुए । तिकाँ = उनके । माढवाँ = मनुष्यों के । खिय = चय । जुवा = जुदा, अलग । मैला = मलिन । भिनख = मनुष्य । ( मैला-

मिनख = दुष्ट मनुष्य । ) मायै = ऊपर । मूँडा = मुख से । वारै = बाहर । धखीरी = स्वामी की, ईश्वर की । पलो = वस्त्र का छेरा । भाया = हे भाई !

भावार्थ कविराजा बीकीदासजी कहते हैं कि अपनी जिह्वा को वशीभूत रखो । कड़वे वचन बोलने से कोई शायारी नहीं है क्योंकि लोहे की तरवार की चोट वैसी नहीं लगती है जैसी जिह्वा की तरवार की चोट लगती है ॥ १ ॥

एक जीम ही के प्रताप से पहिले कई महाभारत आदि युद्ध हो चुके हैं और यह जीम एक क्षण भर में जिन मनुष्यों के मन मिले हुए हैं उनको अलग अलग कर देती है ॥ २ ॥

दुष्ट मनुष्य जरा सी बात के ऊपर उसका विस्तार कर डालते हैं अतः सभा के अंदर बहुत विचार कर मुख से बाहर शब्द निकालना चाहिए ॥ ३ ॥

( हे मनुष्यो ) मन में ईश्वर की माला फेरो जिससे यमराज के दूत कुछ पकड़ ही न सकें और हे भाई ! वकने से तो धन नहीं मिलता है इससे ( वकने की अपेक्षा ) तो कम बोलना ही अच्छा है ॥ ४ ॥

### ३ गीतक

आथे इंगरेज मुलकरै ऊपर, आहँस लीधा खैँचि उरा ।  
धखियाँ भरे न दीधी धरती, धखियाँ ऊमों गई धरा ॥ १ ॥

ये गीत कविया सुरारिदानजी अयाचक से प्राप्त हुए । उन्होंने ने टीका भी की । ह० ना० ।

फौजों देख न कीधी फौजों, दायण किया न खला डला ।  
 खवाँ खाँच चूड़ै खाँवरै, अणहिज चूड़ै गई यला ॥ २ ॥  
 छत्रपतियाँ लागी नँह छाणत, गढ़पतियाँ घर परी गुमी ।  
 बल नँह कियो वापड़ा दोताँ, जोताँ जोताँ गई जमी ॥ ३ ॥  
 दुय चत्रमासवादियो दिखणी, भोम गईसो लिखत भवेस ।  
 पृगो नहीं चाकरी पकड़ी, दीधो नहीं मड़ै ठो देस ॥ ४ ॥  
 वजियो<sup>१</sup> भलो भरतपुरवालो, गाजै गजर धजर<sup>२</sup> नभ गोम ।  
 पहिलाँ सिर साहबरो पड़ियो, भड़ जमै नँह दीधो भोम ॥ ५ ॥  
 “महिजाताँ<sup>३</sup> चीँचाताँ महिला, ऐदुय सरण तयाँ अवसाण”  
 राखो रे किहिँक रजपूती, मरद हिंदू की मुस्सलमाण ॥ ६ ॥  
 पुरजोधाँण उदैपुर जैपुर, पहु थाँरा खूटा परियाँण ।  
 आँकै गई आवसी आँकै, वाँकै आसल किया बखाँण ॥ ७ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ सुलकरै = देश के । आहंस = पराक्रम, शक्ति । उरा =  
 अपनी ओर । जर्मा = खडे हुए, मौजूदगी में । दायण = शत्रु ।  
 खलाडला = नाश । खवाँखाँच चूड़ै = कंधे से कलाई तक के चूड़े  
 सहित । खाँवरै = पति के । अणहिज = उस ही । खवाँखाँच...  
 गईयला = पृथ्वी उसी अपने पुराने पूरे चूड़े सहित दूसरों के अधिकार  
 में चली गई । छाणत = अलखावणी, बुरी । छत्रपतियाँ ... ..  
 छाणत = राजाओं को यह बात बुरी नहीं लगी । परी गुमी = चली

(१) पाठां० अडियो । (२) पाठां० इक । (३) पाठां० चा  
 थाताँ ( दबी हुई ) ) ।



गई । वापड़ा = वेचारे । वीर्ता = डुबोना, खोना । जोर्ता जोर्ता = देखते देखते । चत्रमास = चतुर्मास । वादियो = लड़ा । दिखणी = दक्षिण-देश का राजा । मडैठो देरा = महाराष्ट्र देश । वजियो = लड़ा । गाजै गजर धजर नभ गोम = तोपों के चलने की श्रद्धा से आकाश और पृथ्वी भर गई । चींचार्ता = चिल्लाते समय । महिला = स्त्री । अवमाण = समय । किहिक = कोई । पडु = राजा । खूटा = समाप्त हुए । परियाण = वंग । अकै = समय, भवितव्यता । आवसी = आवेगी । आमल = असल, आसिया कविराज वकीदाम्जी का गोत्र था ।

भावार्थ जब अंगरेज इस देश के ऊपर चढ़कर आए तब उन्होने सबके पराक्रम को अपनी ओर खींच लिया । पृथ्वी के स्वामियों ने अर्थात् राजाओं ने मरकर पृथ्वी नहीं दी किंतु उनके खड़े खड़े ही पृथ्वी ( दूसरों के अधिकार में ) चली गई ॥ १ ॥

शत्रुओं की सेना को देखकर भी किसी ने सेना लेकर सामना नहीं किया और न शत्रुओं का नाश ही किया । यह पृथ्वी तो पूर्व-पति के संपूर्ण चूड़े सहित दूसरों के अधिकार में चली गई ॥ २ ॥

राजाओं को यह बात बुरी मालूम नहीं हुई । किले के स्वामियों की भी पृथ्वी चली गई । इन वेचारे लोगों ने तो पृथ्वी को डुबोते हुए ( खोते हुए ) जरा भी तो पराक्रम नहीं दिखाया । इनके देखते देखते इनकी पृथ्वी चली गई ॥ ३ ॥

दो चतुर्मास ( आठ मास ) तक दक्षिण देश का राजा लड़ा, यदि उसकी पृथ्वी चली गई तो यह होनहार था । उसने तो दासता अंगीकार की ही नहीं और न महाराष्ट्र देश ही दिया ॥ ४ ॥

भरतपुर का राजा भी अच्छा लड़ा । उसने तोपों की गर्जना से आकाश और पृथ्वी दोनों को भर दिया । प्रथम स्वामी का सिर कटकर गिर गया किंतु एक भी योद्धा के खड़े हुए पृथ्वी नहीं दी गई ॥ ५ ॥

ससार में पुरुष के लिये ये दो समय ही मृत्यु के हैं । एक तो जब उनकी जमीन जाती हो और दूसरे जब उनकी स्त्री अन्य के अधिकार में फँसकर असहाय अवस्था में चिछाती हो । कवि कहता है कि अरे कोई तो हिंदू मुसलमान राजपूती ( क्षत्रिय ) धर्म रखो ॥ ६ ॥

जोधपुर, उदयपुर और जयपुरवाले राजाओ ! तुम्हारा तो यह वंश ही समाप्त हो चला । यह पृथ्वी भवितव्यता से ही गई है और अब होनहार होगा तभी यह आवेगी ( स्वतंत्र होगी ) । यह बिलकुल ठीक ठीक बर्बाकीदास ने वर्णन किया है ॥ ७ ॥ ४ ॥

#### ४- गीत\*

सुरपुर तूँ गयो अभिनमा सेवा,  
सुजस राखि घर स्याम सनाह ।  
हुवो नहीं मिलणों तो हूँता,  
कद मिटसी ओ दुख कछवाह ॥ १ ॥  
विभनो तूँ गज गाम बरीसण,  
हुई तेण षट् बरणाँ हाँण ।  
अणमिलणूँ मो हुवो एम तो,  
मिटसी किम मोजाँ महराँण ॥ २ ॥

\* यह गीत कविया मुरारिदानजी अयाचक जयपुरवालों से प्राप्त हुआ था । ह० ना० ।

साजी बाजी सुरग सिधाये,  
मिले दान खग दुवाँ मद ।  
भेट हुवो नँह जको भाजसी,  
कूरम धोको मूक्त कद ॥ ३ ॥  
देवावत लिछमण जग दाता,  
हेळा करण खिताव हुवो ।  
भिड़जाँ भड़ौ चारणौ भाटौ,  
मुँहगा वरतणहार सुवो ॥ ४ ॥ ५ ॥\*

शब्दार्थ अभिनमा = अपूर्व और अनुपम । स्याम सनाह = स्वामी का रक्षक । तो हूँता = तुझसे । कद = कव । विभनो = मर गया । वरीसण = दानी । तेण = वससे । षट् वरणाँ = मारवाड़ में जती, जोगी, संन्यासी, जंगम, द्विज और चारणों को षट् वरणों ( षट् वरसणों ) में गिाते है । मोजाँ महर्णाख = दान का समुद्र । साजी बाजी = बनी बात में, धन-वैभव रहते रहते । दुवाँ = दानों के । देवावत = रावराजा देवसिंह का पुत्र । लिछमण = सीकर के राव राजा लिछमणसिंह जिन्होंने सं० १८१० से १८६० तक राज्य किया । हेळा = दान की लहर । भिड़जाँ = घोड़ों को । भड़ौ = योद्धाओं को । मुँहगा = महंगे, बहुमूल्य ।

भावार्थ—हे अपूर्व, अनुपम और स्वामी-रक्षक ! तू अपना यश

\* गीत ३, ४, ५ कविया सुरारिदानजी अयाचक से प्राप्त हुए हैं और उन्हीं ने सधकी टीका की है । ह० ना० ।

( इस पृथ्वी पर ) छोड़कर स्वर्ग को चला गया । हे कश्यपवंशी !  
इसलिये मेरा यह दुःख कब दूर होगा ? ॥ १ ॥

हे हाथी और गाँवों के दान देनेवाले ! तेरी मृत्यु से याचकों की  
बड़ी हानि हुई । हे दान के समुद्र ! तेरे साथ मेरी भेट नहीं हुई  
सो मेरा यह दुःख कैसे दूर होगा ? ॥ २ ॥

तू संपूर्ण धन-वैभव के होते हुए भी दान और खज के अभिमान  
सहित स्वर्ग को चला गया । हे कूर्मवंशी ! तुझसे मेरी मुलाकात नहीं  
हुई सो मेरा यह धोखा कब मिटेगा ! ॥ ३ ॥

हे संसार को दान देनेवाले राव राजा देवसिंहजी के पुत्र लक्ष्मण-  
सिंह ! तेरे दान की महिमा से तुझे कर्ण ( पांडुपुत्र कर्ण ) की पदवी  
प्राप्त हो गई थी । ( शोक ! महाशोक !! ) आज घोड़ों, घोड़ाओ,  
चारणों और भाटों को मँहंगा ( बहुमूल्य ) रखनेवाला इस संसार से  
कूच कर गया !!

### ५ गीत

नँह पंचाँ जाय लाकड़ी नाँखै,  
धयाँ जोर सज विथाँ धराँ ।  
चाड़ी करै कचैड़ी चढिया,  
नीर ऊतरै पुरत नराँ ॥ १ ॥  
बिगज विभो हल हाँसल विगडै,  
कुबद कमाई जगत कहै ।  
भगडो लागै जिकाँ भूँपडाँ,  
रगडो तलवाँ तयो रहै ॥ २ ॥

महली कुशल विराणें मूँटें,  
 सूक ठमंस वांटणो भेस ।  
 कजियारो फाजै मुँह फालो,  
 कजिया मे नितनवो कलम ॥ ३ ॥  
 राखै संप जिका धन राग्ये,  
 वाँको दाखै साच विघ ।  
 न्याय नीमड़ै जिते नांमड़ै,  
 राज चढै ज्याँ तैणी रिघ ॥ ४ ॥ ६ ॥\*

शब्दार्थ लाकड़ी = लकड़ी, यहाँ इस शब्द का यह भाव है  
 “न्याय के लिये निवेदन करना । विद्या = धन्य । चाड़ी = बुराई  
 करना । कचैड़ी = कचहरी, अदालत । विखज = व्यापार । विभो =  
 वैभव । हांसल = कर । कुवट = गोटी । जिर्का = जिनके । रागो =  
 संकट, आपत्ति । तलवा तणों = अदालत के चुलावों का । महली =  
 महिला, स्त्री । विराणें = दूसरे के । मूँडे = मुख से । सूक = दीखे ।  
 वांटणो = वितीर्ण करना । सेस = सीरखी, प्रसाद । कजियारो =  
 भगडे का । नित नवो = नित्य नया । संप = पुका, पुकता ।  
 दाखै = कहता है । जिते = जब तक । रिघ = ऋद्धि, संपत्ति ।  
 नीमड़ै = समाप्त होवे ।

भावार्थ जब कोई मामला आ पडे तो पत्रों से तो फेंसले के  
 लिये निवेदन नहीं करे, और दूसरे वरों के बल से अर्थात् दूसरों की

यह गीत कवि हिंगलाजदानजी वारेठ से मिला और उन्होंने ने  
 टीका की तथा अन्यत्र भी शंकाएँ मिटाईं । —ह० ना० ।

हिमायत से अदालत में खुगली कर देते हैं अर्थात् दावा कर देते हैं । दावा करने के बाद ऐसे मनुष्य शीघ्र ही शक्तिहीन हो जाते हैं ॥ १ ॥

उन मनुष्यों का व्यापार, वैभव और खेती का हासिल बिगड़ जाता है और उनके इस कृत्य की सब संसार निंदा करता है अर्थात् संसार ऐसा कहता है कि देखो कैसी बुद्धि बिगड़ी है । जिन घरों में ऐसे ऋगड़े लग जाते हैं, उनके कचहरी के बुलावों की आपत्ति लगी ही रहती है ॥ २ ॥

ऐसे मनुष्य ( ऋगड़ेवाले ) अपनी स्त्री की कुशल दूसरों के मुख से ही सुना करते हैं । उनको तो मुकद्दमे की सफलता के लिये सीरणी ( देवता के मिठाई वगैरह चढ़ाकर ) वितीर्थ करने की ही सूझती है । कवि कहता है कि ऋगड़े का मुँह काला करो, क्योंकि इसमें ( ऋगड़े में ) नित्य नया क्लेश प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

कविराजा बांकीदासजी सत्य कहते हैं कि जो पुरुष एकता रखते हैं वे ही धन की रचा करते हैं, नहीं तो जब तक फैसला समाप्त होता है तब तक मुकद्दमेवाजों की संपत्ति समाप्त हो जाती है ।

### (१) गीत\*

( चांपावत खुमाणसिंह जी हेमालेगलिया चारणा वजोग )

सुज दुलभ रषाँ बल सिधौ साधकाँ,

जोगीराजाँ दुलभ जग ।

\* गीतों के आदि में अक-संख्याएँ मूल के गीतों की दी गई हैं । और अंत में सिलसिले की संख्याएँ दी गई हैं । इन संख्याओं को ब्रैकेटों में ( ) रखा गया है ।

खाट्य सुजस भेटियो खूमै,

नरौ सुरौ वच जको नग ॥ १ ॥

अडसट तीरय नयो आभरण,

चावौ पावन चार चक्र ।

राखण वात सेवियो रडमल,

जग जगणीवालो जनक ॥ २ ॥

सुकनावत कुण जुग नै मूकै,

सतजुग तेघ गयो वतसार ।

पूरव पंचम उदध न परसे,

अनड परसियो जको उदार ॥ ३ ॥

हर घर ध्यान कमध हेमालै,

परिहाँ चाहेवा प्रभव ।

किसन वजोग चारणा कारण,

गलियो जुजठण राव गत ॥ ४ ॥ ७ ॥

गद्यार्थ सुज = वही । रपा = ऋषि । बल = बलि, फिर ।  
खाट्य = पैदा करने के लिये । खूमै = सुमाणसिंह चापावत जो  
चारणों के हित के लिये हिमालय गला था । जको = वह । नग =  
पहाड़, यहाँ पर हिमालय पहाड़ । वच = भव्य । आभरण =  
आभूषण । चावौ = प्रसिद्ध । चक्र = दिशाएँ । रडमल = यहाँ  
पर रणमल की, जो जोधपुर बसानेवाले जोधाजी का पिता था,  
संतति से अर्थ है । सुकनावत = सुकुदसिंह का पुत्र । तेघ = वहाँ ।  
पूरव.. ... ..पर से = यहाँ पूर्व दिशा के ५ तीर्थस्थानों से मतलब

है। अनड = अनन्न हिमालय। परिहा = पूर्वजों को। चढेवा = चढ़ाने के लिए। प्रमत = प्रसिद्धि। किसन = श्रीकृष्ण। वजोग = वियोग।

(२) गीत

श्री महिपति मान रीजवै गुणस्रज,  
 कवि समराथ इसो नहि कोथ।  
 मान समापै लाख माँग्याँ,  
 जसा गजनरा विरदों जोय ॥ १ ॥  
 प्रसन करै नवकोट पतीनूँ,  
 ईहग कुण्य एहौ अवरैख।  
 दूण्य पचास हजार दिए दस,  
 दादों तयो विसैसण देख ॥ २ ॥  
 रीजावै कमधों राजा नै,  
 वीदग केहो उकति विसाल।  
 विजाहरो सौसहँस बरीसै,  
 भूप विरद परियाँरा भाल ॥ ३ ॥  
 नंद गुमान सदा निकलंकत,  
 बाधै छत्रधरों इण्यवार।  
 कर आचार ऊजलो कीधौ,  
 इल गज बंध तयो आचार ॥ ४ ॥ ८ ॥

श=दार्थ रीजवै = प्रसन्न करे। गुणस्रज = गुण वर्णन करके।  
 समराथ = समर्थ। समापै = समर्पण करते हैं, देते हैं। माँग्याँ =



याचकों को । जसा = महाराजा यशवंतसिंहजी, जो औरंगजेब के मनसबदार थे । राजनरा = राजसिंहजी के । यह महाराज, यशवंतसिंहजी के पिता थे और इन्होंने विजयसिंह सं० १६७६ से १६९२ तक राज्य किया । ईहग = चारण । अवरख = निश्चय । दस = यहाँ “दत्त” शब्द होना चाहिए जिसका अर्थ ‘दान’ है । वीदग = चारण । केहो = कौन । विजाहरौ = विजयसिंहजी के पौत्र । इन विजयसिंहजी ने सं० १८०६ से १८२० तक राज्य किया था । बरीसै = देता है । परि-रारा = पूर्वजों के । गुमान = गुमानसिंहजी, जो विजयसिंहजी के छोटे पुत्र थे । बाधै = संपूर्ण । छत्रधर्रा = राजाओं में । इखवार = इस समय । कर आचार = अपने पूर्वजों के आचार ( व्यवहार ) को करके । इल = पृथ्वी पर । राजवंधतणो = राजसिंहजी का ।

भावार्थ ऐसा समर्थ कौन कवि है जो अपनी कविता के द्वारा महाराज मानसिंहजी को प्रपन्न करे । मानसिंहजी तो अपने पूर्वज यशवंतसिंहजी और राजसिंहजी के विरद ( बड़ाई ) को देखकर याचकों को लाख पसाव दान देते हैं ॥ १ ॥

( नोट आगे के दोहों में भी ऊपर जैसा ही भाव है )

### (३) गीत

साधनसिध डमै एक साधन सौँ,  
 बाँका सूधो वाट वह ।  
 रीजै देवनाथ रीजायों,  
 पाव जलंधर मान पह ॥ १ ॥

मारग बाग तणौ मति भेटे,

भगत निरंतर उर धर भाव ।

तूठै सुतन महेश तूठिया,

सिष मयनक गुमनेस सुजाव ॥ २ ॥

स्रम थोडै वोह नफो साँपजै,

वीसर मती अनोखी बात ।

रहै प्रसन्न ऐ आयस रीधै,

छात सिधौं नरपतियाँ छात ॥ ३ ॥

कहवत दुनियाँ मॉभ कहोथी,

एक पंथ दोय काज अगौ ।

एक पंथ त्रिण काज अठै इल,

जिण अवगाहण भाग जगै ॥ ४ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ सिध = सिद्ध हो जाते हैं। सूधी = सीधा, सरल। वाट = मार्ग। वह = चल। देवनाथ = यह मानसिंहजी के गुरु थे। पाव = "पाव" जोगी की पदवी। जलधर = यह नाथ संप्रदाय के एक बड़े भारी आचार्य हुए हैं। पह = राजा। मति = नहीं। भेटे = भिटा, छोड़े। भगत = भक्ति। तूठै = प्रसन्न होते हैं। सुतन महेश = महेशनाथ के पुत्र, देवनाथ। सिष = शिष्य। मयनक = जलधर नाथ के गुरु का नाम। गुमनेस = गुमानसिंहजी। यह जोधपुर नरेश विजयसिंहजी के कनिष्ठ पुत्र थे। सुजाव = पुत्र। वोह = अधिक। वीसर = भूलें। आयस = जोगियों में अपने आचार्य को 'आयस' कहते हैं। रीधै = प्रसन्न होने से। छात

सिर्घा = सिद्ध पुरुषों के छत्रगुरु जलधरनाथ । कहवत = कहावत ।  
आगै = पहिले । अठै = यहाँ पर । अवगाहण = ग्रहण करने से,  
दूबे रहने से । भाग जगै = भाग्योदय होता है ।

भावार्थ सरल ही है ।

(४) गीत

निज सुषरुष सेव करावी नाँही,  
दाखै धन धन जाँबूदीप ।  
चूँडाहरा उवारण चौजाँ,  
मौजाँ श्रीहिज मान महीप ॥ १ ॥  
देवे गुणाँ गान गज दीघौ,  
प्रभुता लाख पसाव प्रवीत ।  
कमधज राजाँ तयी कहातै,  
ऐ रीजाँ दूजा अगजीत ॥ २ ॥  
जनम जनमरो दलद जालियौ  
मंगण सिर करतै महर ।  
सुपहांची गुमनेस समी भृम  
लहरी सागर ऐ लहर ॥ ३ ॥  
सरस पुराणाँ वीच सुणी थी,  
किसन सुदाभा तयी कथ ।  
दत देतै साख्यात दिषावी,  
सो विध नव सहंसा समथ ॥ ४ ॥ १० ॥

शब्दार्थ रूप = लिये । दाखै = कहता है । चूंडाहरा = चूंडा के वंशज । चूंडाजी वीरमदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे । यह बड़े वीर पुरुष हुए थे । इन्होंने अपने पिता का गया हुआ राज्य जोहियों से पुनः ले लिया था । और मंडोर के राज्य को, जो पहिले इन्दे राज-पूनों का था, मुसलमानों से लड़कर सं० १४५१ में प्राप्त किया था । सं० १४६४ में नागार के नवाब को यहाँ से चढाई करके भगा दिया । वह सं० १४६६ में मुलतान के अधिकारी फीरोजसुह्रमद को आठ हजार सेना के साथ चूंडाजी पर चढ़ा लाया । इस युद्ध में बहुत से राठोड़ों के साथ चूंडाजी काम आए और नागौर मुसलमानों के अधिकार में चला गया । चौजां = चोचले, आनंद । ऐहिज = यही । प्रवीत = उत्कृष्ट धन । कहातै = यहाँ कहावै पाठ होना चाहिए । अग-जीत = ज्ञात होता है कि कवि ने इस शब्द से महाराज अजीतसिंह की ओर इशारा किया है, जो महाराज यशवंतसिंह के पुत्र थे और जिन्होंने संवत् १७३६ से १७८० वि० तक राज्य किया था । मंगण = याचक । सुपर्हाचो = राजाओं की । भूम = अम । कथ = कथा । नवलहसा समथ = हे समर्थ राजा नवकोटी के ।

नोट बाकीदासजी को महाराजा मानसिंहजी ने लाख पसाव वखशिश किया तब आसिका में जो गीत कहे उनमें से यह गीत है । अर्थ स्पष्ट है ।

### (५) गीत

सिधर गिरां मेरां सबद नाच सरसाविया,  
पाविया जल तरां त्रधा पाली ।

आविद्या उमड घणस्योम वीती अबध,

आविद्या नही वणस्योम आली ॥ १ ॥

आपगां दलण गीषम जलण आहौटी,

विसे षटचलण कलियां कदमप्रन्द ।

वारवाहो कइ आठ मासो वलण,

नह कइ वलणकूँ जसोमत नन्द ॥ २ ॥

हरै लीनो हियो तनां हरिआलियां,

सोर कर सरे दादुर सुहाया ।

गाज ऊंडो करे मेध आया गयण,

नागरी कानजी धरे नाया ॥ ३ ॥

विवध धणमाल नभचक्र माभूल वसी

रवि ससी न दीसै दिवस रजनी ।

मनोभव लगाडै वाँण भोहण मदन,

सहंस वातां सजन आँण सदनी ॥ ४ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ तरा = वृष्टों को । त्रषा = प्यास । पाली = पालना की, मिटा दी, बुझा दी । आपगा = नदियाँ । दलण = टलनेवाली, नाश करनेवाली । आहौटी = यहाँ पर “आहुटी” शब्द होना चाहिए, ‘आहौटी’ में एक मात्रा अधिक है, नाश हो गई । विसे = बस गये । षटचलन = छै से चलनेवाले अर्थात् छः पाँवों से चलनेवाले, भौरे । वारवाहो = वारिवाह, वादल । कइ = कहा । वलण = लौटने को । सरे = तालावों पर । गाज = गर्जना । ऊंडो = गहरी । गयण = आकाश । नाया = नहीं आयु । मनोभव = कामदेव । लगाडै =

लगाता है । सजन = इसके स्थानपर "सदन" और "सदनी" के स्थान पर "सजनी" पाठ होना चाहिए ।

भावार्थ सरल ही है ।

(६) गीत\*

पथिक जाय मथुरा कहे जादवाँपतोनूँ,

आपरा मिलणकूँ वात उरलो ।

आय गोकल मही लेर सुर अनोधाँ,

मया कर सुणावो फेर मुरली ॥ १ ॥

सुरभियाँ चरावो संग लावो सधा,

चैल आवो कदम तणी चोही ।

पोष हित वेल गावो चरित पेमरा,

मुरलिका सुणावो घोष माही ॥ २ ॥

अटक गोपी मही दाँण उधरावजै,

पावजै अधर रस गोरधन पास ।

घर लुकट मुकट वन वीथियाँ घावजै,

बाँसरी वावजै अहीराँवास ॥ ३ ॥

पुलिण रविसुता फहरावजै पोतपट,

आवजै रासथल व्रजनाथ आथ ।

कॉन कवार विहरि गली व्रज कुंजरी,

सुभ रली कीजियै लोडली साथ ॥ ४ ॥ १२ ॥

\* यह गीत "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है ।—ह० ना०

राज्यार्थ जादवापतीनूँ = श्रीकृष्ण को । आपरा = आपके ।  
 मिलणकूँ = मिलने के लिये । उरली = हृदय में धारण की, हृदय  
 की । लेर = लेकर । सुर = स्वर । मया कर = कृपा करके । सुरभिर्या  
 = गायें । चैल = यहाँ “छैल” शब्द होना चाहिए । चाही = यहाँ  
 पर भी “छाही” ही होना चाहिए । वेल = यहाँ पर ‘वले’ शब्द  
 होना चाहिए, ( वले = फिर ) । वोप = बवालियों का गाँव । अटक =  
 रोक करके । मही = दही । दाण = कर, महसूल । उघरावजै =  
 वसूल करिए । पावजै = पिलाइए । वासरी = वासुरी । वावजै =  
 वजाइए । पुलिया = पुलिन, किनारा । रविसुता = यमुना नदी के ।  
 आय = यथ = यहाँ । रली = रास ।

## (७) गीत\*

अडर भूल डर न धारै कसरी आँखरो,  
 पिता माता तणो डर न पूठै ।  
 जतनसूँ सषो दथ वेचवा जावताँ,  
 अचानक कौनरी धाड़ ऊठै ॥ १ ॥  
 गा आल दोडै करै एकठी गोपियाँ,  
 चीर पाँचै थयै हांस चाडै ।  
 गिरावै धूत गोरस भरी गागराँ,  
 पूत जसुदा तणो राह पाडै ॥ २ ॥  
 करन मसलै उरज तोडे अँगियाँ कसाँ,  
 चित चलै अलौकिक करै चालौ ।

\* यह गीत भी “कृष्णचंद्रचंद्रिका” का प्रतीत होता है । ह० ना० ।

बेष नटतणै षडौ बनबोथियाँ,  
बटपडो कुँवर ब्रजराजवालो ॥ ३ ॥

मगाज भइयो वहै चाहि न रषै मुकट,  
बन सधण माँहि मुरली बजावै ।

इसा हर धकै चढ इसी कुण अहीरी,

अँगूठो दिपावे धराँ आवै ॥ ४ ॥ १३ ॥

शब्दार्थ गूल = किंचित् भी । अणरो = आज्ञा, हुकूमत, देहाई । पूठै = पीछे की ओर । घाड़ जठै = लुटेरों का समूह उठता है । गा आल = इस स्थान पर "गोआल" शब्द होना चाहिए, ( गोआल = ग्वालिये ) । एकठी = इकट्ठी । षाँचै = खींचते हैं । घणै हाँस चाडै = बहुत ज्यादा मसखरी करके । धूत = धूर्त, बदमाश । राहपाडै = मार्ग में लूट लेता है । करग = हाथ से । कसा = डोरियाँ जो अँगिया बाँधने की होती हैं, कसणियाँ । तोडे = यहाँ पर "तोड़" शब्द चाहिए क्योंकि इस तुक में एक मात्रा अधिक है । चित चलै = मन चलायमान हो जाता है । ( ऐसे ) अलौकिक चालौ (= खेल, तमाशा ) करै । बटपडो = लुटेरा । मगाज ..... मुकट = इन शब्दों का कुछ अर्थ ठीक ठीक नहीं होता है अतः यहाँ पर "मगाज भरियोवहै चाहि निरखै मुकट" पाठ हो तो उत्तम है, जिसका अर्थ यह है = गर्व में भरा हुआ और अपने मुकुट की परछाँही को देखता फिरता है । हर = हरि, श्रीकृष्ण । धकै = सामने, सम्मुख । धकै चढ = सम्मुख आकर । अँगूठो दिपावे = यह सुहावरा है । इसका अर्थ है चिढाकर, यहाँ बचकर ।



भावार्थ—गोपियां आपस में कह रही हैं; और अर्थ मरले ही हैं।

(८) गीतः

अत परमल पसर पसरिया आँवा,  
सुक पिक वोलै सुपद सराग ।  
रतिपति ताँणै धनुष जठै रुच,  
वरसाँणै देषण न्यूँ वाग ॥ १ ॥  
वेली तरलाँ तराँ विलून्नी,  
वण हरियाली वीस वसा ।  
त्रप प्रषभौण वणाँ ठर नागर,  
वपवन जौवण जोग इसा ॥ २ ॥  
भणणै भभर वास रस भूला,  
सव रत फल दल फूल सभाज ।  
वलसौ रस वस जाय वगीछाँ,  
राधा जनक तथा ब्रजराज ॥ ३ ॥  
भचिवौ भड भकरंद माधवी,  
नंद सुतन दुष सरव नसंत ।  
वणियो रहै वाडियाँ वागां,  
वरसाँणै सासवो वसंत ॥ ४ ॥ १४ ॥

राब्दार्थ अत = अति, ज्यादा। परमल = परिमल, सुगंध।  
पसरिया = फैले। आँवा = आम। सराग = राग सहित। जठै =

८ यह गीत भी “कृष्णचंद्रचंद्रिका” का प्रतीत होता है। ह० ना०।

जहाँ पर। बरसायै = बरसाना आम। देखण ज्यूँ = देखने जैसा।  
 तरला = बढ़कर। तरा = वृद्धों के। विलूंबी = लिपट गई।  
 वण = वन। वीसवसा = बीस बिस्वे, पूर्ण। हर नागर = हे श्रीकृष्ण।  
 प्रप . . . . . इसा = हे श्रीकृष्ण, राजा वृषभानु के ऐसे बाग  
 देखने के योग्य है। भणायै = भिन भिन कर रहे है, गूँज रहे है।  
 बास रस भूला = सुगंध से मतवाले होकर। रत = ऋतु। वलसौ  
 = विलसो, उपभोग करो। बगीछा = बागों में। मचियौ . . . .  
 माधवी = मकरंद और माधवी की झड़ी ( वर्षा ) लग रही है।  
 सासतो = हमेशा।

भावार्थ कोई दूती श्रीकृष्ण को राधा के पास ले चलने को  
 वृषभानु के बगीचे में वसंत ऋतु का हर समय निवास बता रही है।

(६) गीत\*

सिललधार जलधर लगौ सूँड आकृत श्रवण,  
 चमँकियो लोकबलु कमण चालै ।  
 जण समै धरै गिर धयी ते जिम जके,  
 पूज सुरपत तयी भलाँ पालै ॥ १ ॥  
 प्रलै प्रज करेवा नीम दाँभण पतन,  
 गयण फूटै घटा भीम गरजै ।  
 उठावै अछलतो जेम हलधर अनुज,  
 बलु तके यद्रछी भलाँ वरजै ॥ २ ॥  
 गोप गायाँ त्रिया सहत वसिया गिरत

\* यह गीत भी “कृष्णचंद्रचंद्रिका का प्रतीत होता है। ह० ना० ।

चिरत अदभुत तर्णी करत चरचा ।  
 प्राप जिम करग नग घपै दर उचन पे,  
 ऊधपै पुरंदर धयी अरचा ॥ ३ ॥  
 नाम गोवँद यथी नर्मी नँदराय नँद,  
 अमँद जस गोरधन आभ अडियो ।  
 झाड़ आसग्य गयँद धाक माने छली,  
 पाकसासग्य बली पगो पडियो ॥ ४ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ मिललधार = मलितधार, जल की धारा । आकृत =  
 आकृति । श्रवण लगो = चूने लगा, बरसने लगा । चनैकियो =  
 आचर्य किया, भयभीत हुआ । कमण = किसका । ते = यहाँ  
 “तो” शब्द चाहिए । तो = तेरा । धयी = स्वामी । पूज = पूजा ।  
 भलो = ठीक । पालै = रोके । जण समै . . . . . भलो पालै = हे  
 स्वामी ( श्रीकृष्ण ), तुम्हारी तरह जो उस समय गिरि को धारण करे  
 ( उठाए ) वही का इंद्र की पूजा को रोकना ठीक है । नीम = नींव,  
 निश्चय । दामण = विजली । गधथ = आकाश । भीम = अत्यंत,  
 घोर । अदलतो = यहाँ “अचलतो” पाठ होना चाहिए । बल =  
 बलि, पूजा की सामग्री । तके = वह । अदछी = यहाँ “इंदची”  
 पाठ होना चाहिए । ची = की । गिरँत = “गिरँद” पाठ चाहिए ।  
 गिरँद = पर्वत । चिरत = चरित्र । करग = हाथ पर । नग =  
 पहाड़ । घपै = स्थापित करे । दर = असल में, वास्तव में । ऊधपै =  
 स्थापित करे, उठावे, रोके । अरचा = पूजा । थयो = हुआ ।  
 नर्मी = नमस्कार करते हैं । आभ = आकाश । अडियो = अड़ गया,

लग गया । धाक = भय । माने = मानकर । छली = कपटी ।

पाकसासण बली = बलवान् इंद्र । पगा = चरणों पर ।

भावार्थ सरल है ।

(१०) गीत\*

कमल मुगट गाढौ करै पीतपट बाँधकट,

भ्रात बल हाथ दे लकुट भालौ ।

कुमलियापीड सिर विकट आभ्राज कर,

कडछियो कान नटराज कालौ ॥ १ ॥

कमुद-जन विकस सकुछै कमल-कंस कुँभ,

भावकाँ चकोराँ नयण भायौ ।

सबल तम तौम मथुरा गयंद तणै सिर,

अकल गोकल तणौ चंद आयौ ॥ २ ॥

उचजी कुंभथल थाप जडकी उरड,

तुरत कर एकसूं बजी तालौ ।

करी मुख रदन कालीदमण काठिया,

मही मूलौ कढी जाँण माली ॥ ३ ॥

मद सिललल तणौ चाँटा हियै नीलमण,

राजिया रुधर चाँटा पदभराग ।

अहग पग माँड राधारमण उडायौ,

नग समौ विल्लंद मग विप गगन मग नाग ॥४॥१६॥

शब्दार्थ कमल = मस्तक । गाढा करे = कस कर । वल = बलदाज । भालौ = देखो । कुमलियापीड = कस का हाथी कुवल-यापीड । आआज कर = गर्जना कर के । कडछियो = कपटे । विकस = विकसित हुए । सकुछै = यहाँ “सकुचै” पाठ होना चाहिए । कुंभ = यहाँ ‘कुल’ पाठ होना चाहिए । भावकां = भावुक, सहृदय, दर्शक । तौम = समूह । अकल = पूर्ण स्वच्छ, उज्वल । वचजी = यहाँ “जड़जी” पाठ होना चाहिए । जड़जी = वछलकर, कपटकर । कुंभवल = कुंभस्थल । थाप = थपड । जडकी = मारी, लगाई, जडी । उरड = पराक्रम । करीमुख = हाथी के मुँह से । काठिया = यहाँ “काठिया” पाठ होना चाहिए । चाटा = “छांटा” पाठ होना चाहिए । राजिया = सुगोमित हुए । नग = पहाड़ । विलँद = तुलंद, बड़ा । विप = यहाँ “वप” या “वपु” पाठ होना चाहिए, ( वप = शरीर ) । नाग = हाथी । नग .. .. नाग = इस पुक में दो मात्राएँ अधिक है, “मग” शब्द एक ही स्थान पर होना चाहिए । “मग” शब्द एक स्थान पर से निकाल देने से यह पाठ रह जाता है ‘नग सभी विलँद वप गगन मग नाग’ ।

### ११ गीत

कीजै नीवरी गूँट ज्यूँ पोजै प्यालौ कालकूट कोम,

मणों तौल तौलियाँ तुलीजै कोम भेर ॥

वीजौ कलौ पॉतरै अभीरदौलो गेर वैठो,

न जावै भलीथौ औढौ कलौ रायॉनेर ॥ १ ॥

दगै तोफाँ वहे गोलारोहला मोरछा दोला,  
जो लार सकै सूता सेरनै जगाय ॥  
भूरजाल वांकडौ बीटीयौ दूजां गढां भौलौ,  
लोहां जाल घसै केहौ नसैणी लगाय ॥ २ ॥  
लेर बीडो लीधी जिका पृंनारी संपदालूट,  
फरकावादनै कीधी षाष सापफेर ॥  
तकाँ लेवीयै देर हलौ न कीधी वजाड तासा,  
उदौरा पतारौ कोट दूसरौ आसेर ॥ ३ ॥  
रायाँनेर वज्रसौ वणायौ गाढे रावरूपै,  
आयौ श्रीगोपाल बेल चाढे वंस आव ॥  
हजारां रसाला वाढे अषाढै दिखाया हाथ,  
नबीरी कसमां काढे वखाणै नबाव ॥ ४ ॥

शब्दार्थ गूँट = गुटक । नींबरी = नीम की । केम = कैसे ।  
मेर = मेरु पर्वत । बीजौ = दूसरा । कला = किला । पतिरै = भूलकर  
घोले मे । अमीर = नवाब भीरखा जिसने जोधपुर की गद्दी मृत राजा  
भीमसिंहजी के पुत्र धौंकलसिंह को दिलाने के लिये सवारसिंह आदि  
के साथ जोधपुर का किला घेर लिया था, जिसने उस समय पर राज-  
स्थान में बहुत लूट-खसोट मचा रखी थी और जो अत में अंगरेजी सर-  
कार के संधिपत्रानुसार टोंक आदि लेकर नवाब बन गया था । दोलौ-  
गेर = घेरा डालकर । भलीयौ = यहाँ भेलियौ पाठ होना चाहिए ।  
भेलियौ = धुसना, अदर जाना । ओढौ = विकट । तोफाँ = तोपे ।  
दोला = चारों ओर । लारसकै = यहाँ बकारसकै पाठ होना चाहिए

क्योंकि एक मात्रा कम है। भूरजाल = किता। वॉडो = वॉका, विकट। वीटियो = घेरा दिया। भौलौ = यहाँ 'भौलै' पाठ होना चाहिए। भौलै = धोखे में। घसै = घुसना। केहौ = कौन। नसैली = सीढ़ी। लेर = लेकर। वोडो = वीडा। पूनारी = पूना शहर की। सन् १६०२ ई० में जसवन्तराव हुंकर के साथ अमीरखाँ ने, सदागिवराव वखशी वायस साहब पर जो संधिया के तरफदार थे और जिनके साथ में राहामतखाँ व नागोजी पंडित भी था, चढ़ाई की जिसमें संधिया हार कर पूना भाग गया। फिर हुंकर ने और अमीरखाँ ने पूना पर चढ़ाई की जिसमें वायस साहब तो काम था गए और दौलतराव संधिया और पेशवा वाजीराव वगैरह भाग गए। फरकावाद = शहर का नाम जो देहली के पास है। फरकावाद का लूटना तो किसी इतिहास से नहीं जाना जाता है। किंतु ऐसा मालूम होता है कि जब जसवन्तराव हुंकर "माली साहब" को हरा चुका था उस समय जनरल लेक ने जसवन्तराव को फरखावाद में हराया था और होकर वहाँ से भाग कर भरतपुर आ गया था, उस समय उसने भील से अमीर छोटा को अपनी मदद के लिये बुलाया था और वह (अमीरखाँ) कई गाँवों शहरों को लूटता हुआ हुंकर से भरतपुर में आ मिला था। संभव है इसी समय अमीरखाँ ने फरखावाद को लूटा हो क्योंकि शहरों के नाम तो कहीं दिए नहीं गए हैं जिससे ठीक ठीक बातें मालूम हो सके किंतु लूट-मार अवश्य की गई थी ( तवारीख टोंक से )। तर्का = उनको वन शहरों को। वजाड = वजाकर। तासा = एक प्रकार का चमड़े से मड़ा हुआ छोटा चपटा ढोल, जो सीने के आगे रख कर बाँस की

खपच्चियों से बजाया जाता है । उदोंरा = यहाँ उदारा पाठ होना चाहिए,  
 उदारा = उदावत राजपूतों का । पतारो = यहाँ 'पतीरो' पाठ होना चाहिए,  
 पतीरो = मालिक का । आसेर = किला । रावरूपै = राव रूपसिंह जिन्होंने  
 इस किले को बनाया था । बेल = सहायता । आब = आभा, कांति ।  
 अखाहै = मैदान में ।

नोट इतिहास से तो ज्ञात नहीं होता कि किस समय पर  
 अमीरखाँ ने रायनेर के ऊपर चढ़ाई की थी कि तु ऐसा ज्ञात होता है  
 कि जब अमीरखाँ ने मृत राजा भीमसिंह (जोधपुर) के पुत्र धौकलसिंह की  
 तरफदारी करके महाराजा जगतसिंह (जयपुर), महाराज सूरतसिंह  
 (बीकानेर), पौकर्ण के ठाकुर सवाईसिंह आदि के साथ महाराजा मानसिंह  
 जी के विरुद्ध जोधपुर पर चढ़ाई की थी, उस समय महाराजा  
 मानसिंह जी ने बीस लाख रुपया देने का वादा करके अमीरखाँ को  
 अपनी तरफ मिला लिया था । इसलिये फिर जोधपुर पर चढ़ाई करनेवालों  
 को सफलता नहीं मिली और वे अपने अपने स्थान पर वापिस चले  
 गए । अमीरखाँ कई कारणों से वही रुक गया था । इसी समय पर सम्भ-  
 वतः इसने रायनेर पर घेरा डाला हो जिसका वर्णन कविराजा रघीदास  
 जी ने उक्त गीत में किया है ।

### १२—गीत

मने मान डर गुमर चोडे अगार भीररै,  
 हैदराबाज जोडे दुहुँ हाथ ।  
 भीर आवौ जपै सुरतसी तणा भड,  
 नरभावौ षौंजियै जोधपुर नाथ ॥ १ ॥



अमरसर बधूँडै घेट लाहौर अब,  
 छलीषांमे दरब ताप छाया ।  
 करो मो मृत वीकांण पाया कहै,  
 अजा दूजा तथां कटक आया ॥ २ ॥  
 सायवाँ फिरंगाँ धकै जंगल सोहड़,\*  
 धात नज दुष पढै सोछ गाढै ।  
 जुडै मांसजा जैपुर तथां जिलासूँ,  
 किलासूँ मांन माहराज काढै ॥ ३ ॥  
 गुरक हिंदू रहै फिरंग मालकत  
 के कहै वीकांणरा कूककरयाँ ।  
 भूप नव कोटरा अगार हासल भरै,  
 चाकरी करौ सिर धरौ चरयाँ ॥ ४ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ गुमर = घमंड । चोढे = यहाँ 'छोडे' पाठ होना चाहिए ।  
 अगार = सन्मुख । हैदराबाज = तत्कालीन समय में हैदराबादी  
 रिसाला नामक एक सेनादल भी राजस्थान आदि देशों में खूब लूट-  
 मार करने में प्रसिद्ध हो गया था तथा रूपयों के लोभ से हर किसी  
 की तरफदारी करके लड़ने को तैयार रहता था । कविराजा जी का  
 इसी ओर इशारा है । भीर = यहाँ 'भीड' पाठ होना चाहिए ।  
 भीड़ = सहायता । जपै = कहते हैं । सुरतसी = वीकानेर के महाराज  
 सुरतसिंह । तथां = का । भड = योद्धागण । चरभावौ = यहाँ  
 'निभावौ' पाठ होना चाहिए, निभावौ = पूर्ण करो । बधूँडै = खूब

\* "गीत गावै हीयै भीत गाढै" यह और जिला है ।

खानबीन की। थेट = अंत तक। भृत = यहाँ 'मदत' पाठ होना चाहिए, क्योंकि एक मात्रा की कमी है। अजा = यशवतसिंह के पुत्र अजीतसिंह। दूजा = दूसरे। धकै = सन्मुख। जंगल सोहड़ = बीकानेर के सुभटगण। नज = यहाँ 'निज' पाठ होना चाहिए। सोछ = यहाँ सोच पाठ होना चाहिए। जिलासू = जिलायत से, मदद से। तुरक... . . .मालकत = इस पद में एक मात्रा की कमी है। अतः ऐसा पाठ हो तो उत्तम हो "तुरक हि दूर है फिरंगी मालकत", इसका अर्थ होगा "क्या हैदराबादी रिसाले से, क्या जयपुर से और क्या अँगरेजों से किसी से भी इस युद्ध में सहायता नहीं मिली। के = क्या। बीकाणरा = यहाँ एक मात्रा बढ़ती है इसलिये "बीकाण" ही होना चाहिए। कूककरणां = दूत। भरै = यहाँ पर "भरौ" पाठ होना चाहिए।

नोट—महाराज मानसिंह (जोधपुर) ने बीकानेर के ऊपर इसलिये चढ़ाई की थी कि बीकानेर के महाराज सूरतसिंह ने धौंकलसिंह का पक्ष लेकर मानसिंहजी पर चढ़ाई की थी। ५ महीने के घेरे के बाद जब अन्य सहायकगण चले गए तब बीकानेरवाले भी वापिस आ गए और लौटते समय फलौदी को अपने अधिकार में कर लिया। इस पर मानसिंहजी ने समय पाकर बीकानेर पर चढ़ाई की और युद्ध का कुब्र खर्च तथा फलौदी लेकर सन्धि कर ली।

वाँकीदासजी के स्फुट सर्वैया, कवित्त, छप्पै आदि ॥

सर्वैया

माते गयंद वने गरजे वन की रितु मानो घटा घहरानी ।  
 वंका निसान लगे फहरान पिसाचरे प्रेत उमंग सी आनी ॥  
 वाजनके खुरतार वजेर मिवास भजे प्रलयाक्रत ठानी ।  
 मानमहीपकियौ दल मानव चढ़ि उतर्यौ सिरोही के राव को पानी ॥१॥

शब्दार्थ गाते = मस्त । गयद = हाथी । खुरतार = खुरताल, घोड़ों की नाल । मिवास = स्थान । भजे = भग गए ।

नोट ( १ ) इस छंद के अंतिम चरण में गण ठोक नहीं है अतः गति में बहुत फर्क आता है । ( २ ) महाराज मानसिंहजी की सिरोही पर चढाई का हाल "सिरोही का इतिहास" में रा० ब० महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंदजी श्रीका इस प्रकार लिखते हैं "जब जोधपुर के महाराज विजय सिंह का देहात हो गया तब भीमसिंहजी गद्दी पर बैठे और अपने सब भाइयों को नष्ट कर दिया । मानसिंहजी ने पाली लूटकर जालौर का किला अपने अधिकार में कर लिया । भीमसिंहजी ने इनके विरुद्ध जालौर को घेर लिया । इस समय मानसिंहजी ने चाहा कि हमको भी अजीतसिंहजी की तरह सिरोही में शरण मिल जावेगी इसलिए अपना जनाना तथा कुँअर छत्रसिंह को सिरोही भेज दिया, किंतु यहाँ के महाराज वैरीनाल ने भीमसिंहजी के डर के बारे इनको शरण नहीं दो, इसलिए इनको लौटना पड़ा । लौटते समय कुँअर छत्रसिंह की आँख एक दरख्त की शाखा लगने से फूट गई । इससे महाराज अत्यंत ही क्रुद्ध हुए । जब भीमसिंहजी की मृत्यु के

बाद महाराज मानसिंहजी गद्दी पर बैठे तब उन्होंने बदला लेने के लिये मृतज्ञानभल को सिरोही पर भेजा । उसने वहाँ खूब लूट-मार की और सिरोही को तबाह कर दिया ।

( ३ ) आगे के और छंदों में भी इसी सिरोही राज्य पर चढ़ाई का वर्णन है, वे भी इसी इतिहास से सम्बन्धित हैं ।

कवित्त \*

कोसो इंद्रजीत कुलपति रामसिंहजूकै  
चंद प्रथीराजकै खुसाल कहै जनकै ।  
मंगड़ ज्यों रानकै विहारी जयसिंहजूकै  
गंग हौ प्रवीन अकबर सुलतानकै ॥  
भूषन सिवाकै लीलाधर गजसिंहजूकै  
कवि ज्यों कवलनैन अनुवरखाँनकै ।  
कालीदास भोजकै ज्यों विक्रमकै वयताल  
त्यौँही कवि बाँकीदास महाराजा मानकै ॥२॥

शब्दार्थ अर्थ सरल ही है ।

सवैया

पूरब ओर दिनेस उदै अरु संभु कौ ध्यान पुरानन गायौ ।  
भीषम सील धनंजय बान विरंच कौ आँक त्रिलोक बतायौ ॥  
भूमकी मंड भुजगम सीस तैं औ ध्रुव थान अखै छवि छायाँ ।  
एत टरैं तो टरैं पै टरैं नहिं मान महीपत को फुरमायौ ॥ ३ ॥

इस सभ्रह में यह कवित्त बहुत गौर का है । इसमें अन्य विख्यात कवियों के साथ बाँकीदासजी का नाम है ।

शब्दार्थ मंड = मडलाकार । औ = यह । ध्रुव = ध्रुव ।  
 यान = स्थान । अखै = अक्षय । एत = इतने । फुरमायो = कहा हुआ ।

### सवैया

मांन गुमान के नंदन सौं रन कौन रचै वर नाथ कौ पायौ ।  
 बंक प्रताप मनौ जयचंद सवै जग कौ जस उज्जल छायौ ॥  
 रावकरी तहिसौं अकसै फिर भाज गयो रन भौम न आयौ ।  
 ऐसोही काज करयो चहुवांन सु लाजविहीन है नाम लजायौ ॥४॥

शब्दार्थ—नाथ = कनफटे साधु, महाराजा मानसिंहजी को नाथ-  
 संप्रदाय के साधुओं पर बहुत ही श्रद्धा-भक्ति थी । अक्सै = शत्रुता ।

### कवित्त

भाते वीररस ऐसे विदा भए जोधमिल  
 प्रवल प्रथीप मांनसिंध महामानी के ।  
 साज्यौ हल्लालीनीजू सिरोही ताव तेगन कै  
 भाज्यौ राव तजकै समाज रजधानी के ॥  
 क्रुद्ध कर लखपति मान सुरतान कीने  
 बाँकीदास कहत हुकम पायवानी के ।  
 मुर गए जोमदेव रानके प्रवारे भारे  
 दुर गए पांवांगढ़ दिल्ली औ दतांनी के ॥५॥

शब्दार्थ प्रथीप = पृथ्वी के मालिक । ताव तेगन कै = तेगो  
 की मार से । प्रवारे = असिद्धि ।

कवित्त

प्रबल प्रकासै तेज मांन रविवंसमनि  
 ताकी त्रास सिंध से जवन देस धरकै ।  
 दच्छनी सरन आए गाए जसगीत जग  
 सुन कै पता उर अरिन की दरकै ॥  
 बाँकीदास कहत सिरोही तैं जु भाग्यौ राव  
 पाग्यौ भय ताकी चतुरंगनी सौँ अरकै ।  
 संवत अठारै मांभ गमए अठारै गिर  
 विनमति अठारै विसैकी बात करकै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ - अरकै = अड़कर । गमए = खोए । करकै = कड़कती  
 है, खटकती है ।

सवैया

नृप मांन के बंक्र सुभाव बिलोकत चित्त की वृत्ति अचंभो धरै ।  
 चतुरानन आन पढ़ावै विचच्छन तोउन जीभ नकार ररै ॥  
 सुरवैद धनंतर संजुत आन नयौ रच चूरन दैरु अरै ।  
 नहिं जद्यप रीज पचै यहकौं गज गामगुनीन कौं दान करै ॥७॥

शब्दार्थ विचच्छन = विलक्षण । ररै = कहे । चूरन = चूर्ण ।  
 दैरु = देकर फिर । अरै = अठना, रोकना । रीज = दातव्यता ।  
 पचै = हजम होना ।

सवैया

तैं पहिलै तन गाढ़ गह्यौ अरु फौज लई रच खोल खजांनौ ।  
 मांन महीपति के दल आए सक्यौ नहिं थांभ तू वेग भजांनौ ॥

राव सौं संमुपुरी यह रीत उचारै अकीरति या जीव जानौ ।  
तेरौ तौ नाम लज्यौ सौ लज्यौ पर तोकर भेरौ ही नाम लजानौ ॥८॥

शब्दार्थ लज्यौ नहिं शर्म = रोक नहीं सका ।

छप्पै

मसत हसत बहु भौल द्वार घूमै खलदाहण ।  
वालाँ हौसै वाज वगै जाण्ये रविवाहण ॥  
कचण जवहर क्रंत विविध सिंगार वडाई ।  
पौसाकां परमलै अतर डमरा छवि आई ॥  
साजां जलूस डेरा सरस नेसहूँत उण तन लसी ।  
महिदेवनाथ तो महिरसौं बंकवणै नवनिध वसी ॥९॥

शब्दार्थ मसत = मस्त । हसत = हाथी । वालाँ = धोड़ों के  
बंधने का स्थान । डमरां = सुगंधि, समूह । देवनाथ = महाराज  
मानसिंहजी के गुरु ।

१३ गीत

कंचण खंभ मंडति कीन वरणण छविकराँ,  
भलहल क्रतपूर भलूस सुगता भालराँ ।  
अद्भुत वितानाँ आरंभ भौल अपंपरा,  
जोडै डमर डेराँ जोग भाद्रव जलधराँ ॥१॥  
विध विध वनीयां विसतार चाँदगियाँ वगै,  
उज्जल खीरसिंधु अमद लहराँ ऊफणै ।  
प्रवटै जटत जवहर पंत अति आछापणै,  
तौराँ भांन राजै तखत परस रवितणै ॥ २ ॥

अविचल छत्र सुखसुख ओप उछव आँखजै ।  
 परतख अलंकृत जस पेंज प्रभत प्रभाँणजै ॥  
 बाँणक डुलै चमराँ बस इम बाखाँणजै ।  
 जगमग सूर सीस जरूर ससिकर जाँणजै ॥ ३ ॥  
 उकताँ सुकवि बोलै ऊच बिरदाँ आवली ।  
 राजस भडाँ गहमह रूस पूरण नितरली ॥  
 बौह जुग तपौनृप धजबंध औ आपह वली ।  
 सुरधर गुमाननंद मयद थिर महि मडली ॥ ४ ॥

शब्दार्थ क्रंतपूर = क्रान्तियुक्त । कूलूस = जलूस । सुगता = मोती ।  
 कालर्राँ = कालर । मोल = मूल्य । जोडै = समान । डमर = समूह ।  
 बाँणक = बणाव । गहमह = अधिकता । रूस = इच्छा । बौह = बहुत ।  
 आपह वली = स्वयं बलवान् । सुरधर = मारवाड़ । मयंद = सिंह ।

( जोधपुर की पुस्तक नं० १ से )

[ इन छंदों को कविया मुरारीदानजी जयपुरवालों को दिखा कर निश्चय किया गया कि ये छंद संभवतः कविराजा बाकोटासजी की ही रचना है । ]

### १४ गीत

कीधौ तैं कोप साजियो काँनौ, रडमल नै दीघा तै राज ।  
 चारण वाडाँतणीं चारणी, लोक मही तूं राखै लाज ॥ १ ॥  
 बटपाडां धरपाडां वाली, आभ जडां नाखै ऊपाड़ ।  
 कोय न गाँज सकै कनियाँणी, भीभलियाल तुहाला भाड़ ॥ २ ॥



मेछां अपराधियाँ मारणी, भलां सेवगाँ आवै भाव ।  
करै करौं छाया तूं करनी, गाजै कुण गढवाडाँ गाव ॥ ३ ॥  
दाँका मेहासधू म वीसरै, संकट हरै साँभलै साद ।  
गढवाडा गढ औलै गाजै, मढरै औलै गढाँ अजाद ॥ ४ ॥

शब्दार्थ काँनौ = जागलू का स्वामी जिम्को करणीजी ने मारा  
था । रढमल = रणमल, जो काना के छोटे भाई थे । इनके पुत्र राव  
जोधाजी ने जोधपुर बसाया । वाडाँ = निवासस्थान । वट पाडाँ = लुटेरे ।  
धरपाडाँ = पृथ्वी छीननेवाले । वाली = वनकी । आम = आसमान ।  
जडाँ = जड़मूल से । नाख = डालें । जपाडू = उत्थापित करके ।  
गाज सकै = नाश कर सकें । कनिय्याणी = करणीजी का  
गोत्र यहाँ संबोधन है । क्कीकलियालू = हे क्कीकरे पहिननेवाली ।  
तुहाला = तेरे । काड = जमीन । मेछाँ = मलेच्छ । गढवाडाँ = चारखो  
के । मेहासधू = मेहाजी की पुत्री । साद = शब्द । औलै = संरक्षण में ।  
मढरै = करणीजी के मंदिर के ।

नोट यह गीत भी करणीजी की स्तुति में है किंतु अधूरा ही है ।

### १५ गीत

सेषारावनूँ मुलतांण सपाहाँ, जडियौ साँकल जाली ।  
पाछौ जिकौ आणियौ पूंगल, देवी घै दाढ़ाली ॥ १ ॥  
भेलै फौज कामराँ मिरजौ, ऊ जंगल धर आयौ ।  
केवी तै भाजै कनिय्याणी, जैतराव जितायौ ॥ २ ॥  
कोट घेरियौ पैला कटका, अधिक साँकडे आयौ ।  
के वेल़ा माता तै करनी, वीकानेर वचायौ ॥ ३ ॥

बाँकी कहै टलै दिन विधमा, धणियाँणी नै धायौ ।  
 लोवडियाल ताप नह लागै, ओलै थारै आयौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ सेपाराव = यह पूँगल का राजा था जिसको मुलतान के नवाब ने कैद कर लिया था । सपार्हा = राजा । पाछौ = वापिस । जिकौ = उसको । आणियो = लाए । दाढ़ाली = डाढ़ीदार । ऐसा प्रसिद्ध है कि करणजी के कुछ कुछ डाढ़ी थी । केवो = शत्रु । पैला = अन्य । सार्कडे = नजदीक । के वेला = कितनी दफा । दिन विपमा = मुसीबत के दिन । धणियाँणी = स्वामिनी । धायौ = ध्यान करने से, स्मरण करने से । लोवडियाल = हे लोई ओढ़नेवाली ( लोई = एक प्रकार का बढ़िया कंबल ) । ओलै = शरण में । थारै = तुम्हारे ।

### १६ गीत

चौसठ अवधान तथा चतुराई, बोलण माहराजाँ बिरद ।  
 पूवी मिली धारणा व्याताँ, जगदभा तो कृपा जद ॥ १ ॥  
 प्रसोत्तर चरचा मत पीगल, भूषण सबद अरथ रस भाय ।  
 बाँकीदास जाँणिया विध विध, राज अनूग्रह जगल राय ॥ २ ॥  
 भाषा बृज मारु सुर भाषा, भाषा प्राकृत जान भर ।  
 पायौ रचण रूपगाँ पैडो, मेहाही थारी महर ॥ ३ ॥  
 कामधेनु सुरनर तू करनी, जेण कितौ यक करुँ जस ।  
 मानधणी तैं दीधौ मोनुं कृपा महल चढियौ कलस ॥ ४ ॥

शब्दार्थ चौसठ अवधान = महाकवि बाँकीदासजी चौसठ बातें एक साथ किया करते थे । पूबी = खूबी, विशेषता । व्याताँ = इतिहास-संबन्धी बातें । रूपगाँ = कविता । पैडो = मार्ग । मेहाही = हे मेहाजी की पुत्री ।

१७ गीत [ दुर्गादासजी को ]

दुर्गादास सोनग दुहुँ भीच ग्रहियां दुजड,  
 कथन पतसाहनैँ यूँ कहावै ।  
 जसारा ढीकरा विना गढ़ जोधपुर,  
 पत्री अनपसैँ सुज पता पावै ॥ १ ॥  
 आसकन तखौँ वीठल तखौँ कहैँ एम,  
 पात रछपाल ग्रहियाँ षडग पाँण ।  
 राजरो थापियो राजन लहैँ रवद,  
 धणी रहे थापसाँ जकौँ जोधाँण ॥ २ ॥  
 भीर रहे जकाँ भीरी विसंभर,  
 गाँज कुँण सकैँ जसराजरा गाव ।  
 राव एक थाप ऊथापिया रिडमलौँ,  
 रिडमलौँ पुडदड़ी राधिया राव ॥ ३ ॥  
 जके भड़ छेड़ पोसाड़ भ्रकबर जवन,  
 हाथ हैँ हीया हत हरिँया ।  
 पाम जोधाँण अदू सीग फल पामिया,  
 साह मोकालिया जगत सुगिँया ॥ ४ ॥

शब्दार्थ दुजड = तरवार । जसारा = यशवंतसिंह को । ढीकरा = पुत्र । अनपसैँ = नाराज होंगे । पता पावै = दुःख उठावेंगे । आसकन तखौँ = आसकरण का पुत्र दुर्गादास । वीठल तखौँ = वीठलदास का पुत्र सोनग । पात = चारण । रवद = मुसलमान । थापसाँ = स्थापित करेंगे । भीर = सहायता पर । भीरी = सहायक । गाँज सकैँ = छीन सकैँ । रिडमलौँ = भाई, बेटे, जागीरदार ।

## १८ गीत [ बलूजी चाँपावत को ]

ए आगम कथन जे सहर आषै, पोह धू जाँणे मेर प्रमाँण ।  
 मोनै अस रीभे मोकलियो, देखू अस बदलो दीवाँण ॥ १ ॥  
 जग पड वचन कहै जोधपुरौ, पता वचन नह षता पर ।  
 दहवारी काकल हुवै तण दिन, भाड़ौ असचौ लीध मर ॥ २ ॥  
 प्रभणै गोपालोत यसी परा, जाँण उदै गिर रीत जही ।  
 आहाड़ा अस तसरौ अदलो, नरंद बलू चूकसी नहीं ॥ ३ ॥  
 अमरसु छल गज गाह आगरै, रण चढे घणौ मार सूँ रोद ।  
 चलतै दल घाटी चीतोडा, साकुर भर लीजै सीसोद ॥ ४ ॥  
 भीड पुरसाँण राँण दल भागा, समहर असर भोजिया सार ।  
 उमै दलाई निजर जद आयौ, अस नीलो कम्मँध असवार ॥ ५ ॥  
 घाट निराट अहाड़ा घटताँ भाट पगाँ अर घाट जलू ।  
 नरपुर तहाँ वचन नरवाहे, बसियो सुरपुर पछै बलू ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—आषै = कहता है। पोह = प्रातःकाल। मेर = मेरु पर्वत।  
 अस = अश्व, घोड़ा। मोकलियो = भिजवाया। दीवाँण = उदयपुर के  
 महाराणा एकलिंगजी के दीवाण कहलाते हैं। दहवारी = स्थान-  
 विशेष। काकल = युद्ध। असचौ = घोड़े का। प्रभणै = दृढ वचन  
 कहता है। गोपालोत = गोपालसिंह का वंशज। साकुर = घोड़ा।  
 आहाड़ा = गर्व-विशेष। नरवाहे = निर्वाह किया, निभाया।

नोट बलूजी चाँपावत के लिये ऐसा प्रसिद्ध है कि यह नागौर  
 ठिकाने के जागीरदारों में से थे और जोधपुर-नरेश राजसिंहजी के बड़े

पुत्र अमरसिंहजी के पास रहा करते थे। कहते हैं कि अमरसिंहजी जिद्दी और धुनी मनुष्य थे। इन्होंने अपने सब जागीरदारों को ऐसा हुक्म दे रखा था कि वे राज की गाएँ जैसे आदि जानवरों के साथ, जब वे चराई पर जावें, तब रक्षार्थ जावें। इस तरह से जब बलूजी की वारी आई तब यह बहुत बिगड़े और अमरसिंहजी के पास आकर बहुत कहां-सुनी करके वहाँ से अन्यत्र जाने को बिदा हुए। तब अमरसिंहजी ने ताने के तौर पर कहा कि अब आप जरूर बादशाही सेना को मोड़ेगे (पराजित करेंगे)। यहाँ से चलकर यह (बलूजी) वीकानेर आए। कई दिनों तक ये यहाँ रहे लेकिन यहाँ के सरदारों से इनकी बनी नहीं इसलिए महाराज के कान भरना शुरू कर दिया। एक दिन महाराज ने फसल के मौके पर इनके पास एक बहुत बड़िया मतीरा (तरबूज) भेजा। उस समय पर वहाँ पर बैठे हुए किसी ने इनसे कहा कि इस “मतीरे” के भेजने का भी आप अर्थ समझे या नहीं? तब इन्होंने कहा कि नहीं। उसने अर्ज की कि हमारे यहाँ जब किसी को निकालना होता है तब उसके पास “मतीरा” भेज देते हैं। इसका अर्थ यह है कि अब आप “मतीरो” अर्थात् मत रहो। यह सुनकर बिना किसी से कुछ कहे-सुने वे वहाँ से रवाना होकर उदयपुर के महाराणाजी के पास आए। महाराणाजी ने इनको बड़े आदरपूर्वक अपने पास रख लिया। किंतु यहाँ पर भी यह अधिक समय तक न रह सके, क्योंकि यहाँ भी जागीरदार इनसे ईर्ष्या करने लग गए और इन्होंने महाराणाजी से अर्ज की कि बलूजी चाँपावत बिना हथियार गेर का शिकार कर सकते हैं। बलूजी से जब कहा गया तो

इन्होंने इस प्रकार शिकार खेलना स्वीकार कर लिया। निश्चित समय पर सकुशल शिकार हो ही गया। लेकिन साथ ही बलूजी का मन भी महाराजाजी की ओर से फट गया। इसलिये ये यहाँ से भी बिदा हो गए और सीधे बादशाही दरबार में पहुँचने के लिये आगरा आए। बादशाह शाहजहाँ ने इनको अपने यहाँ नौकर रख लिया।

इधर महाराजाजी के पास एक व्यापारी चार घोड़े लेकर उपस्थित हुआ और इनका मूल्य चार लाख रुपया उसने माँगा। राजाजी ने पूछा कि इनमें ऐसे कौन से गुण हैं जो इनकी कीमत एक एक लाख रुपया है। उत्तर में सौदागर ने निवेदन किया कि मेरे कहे मुताबिक यदि इनमें गुण न निकलें तो मैं इनका मूल्य नहीं लूँगा वरना मैं चारों के मूल्य का हकदार होऊँगा। महाराजाजी ने इसे स्वीकार कर लिया। तब उसने अर्ज किया कि एक बड़ी शिला मँगाई जावे और घोड़े के सुमों के बराबर गहरे खड्डे खुदवाए जावे। इसके बाद ऐसा ही हुआ। घोड़े को उस शिला पर खड्डों में पैर रखाकर खड़ा किया गया और फिर शीशा गलाकर उन खड्डों में भर दिया गया। इस तरह घोड़े के चारों पाँव उस शिला में चिपका दिए गए। इसके बाद सौदागर ने अर्ज की कि अब किसी बढ़िया सवार को इस पर सवार कराइए। आज्ञानुसार वैसा ही हुआ। घोड़े के चानुक लगाया गया। घोड़ा उछला, चारों सुम शिला में ही रह गए। तब सौदागर ने अर्ज की कि अब जब तक सवार नहीं उतरेगा तब तक घोड़ा बहुत अच्छी तरह काम देगा। इस प्रकार दूसरे घोड़े का पेट चीरकर तमाम अर्ति बाहर निकालकर तग कस दिए गए और अर्ज की कि जब तक इसके यह तांग नहीं खोले

जावेंगे तब तक यह काम देता रहेगा। इस तरह दो घोड़ों की मृत्यु के पश्चात् महाराजाजी ने सौदागर को चार लाख रुपया दे दिया, बाकी दोनों घोड़े अपने पास रख लिए। अब महाराजाजी ने विचार किया कि ये घोड़े किसको दिए जावें, कौन इनकी सवारी के योग्य है। किसी ने किसी का नाम बताया किसी ने किसी का, किंतु महाराजाजी ने कहा कि यहाँ तो इन घोड़ों की सवारी के लिये कोई भी योग्य व्यक्ति नहीं दिखाई देता। अतः एक घोड़ा तो बलूजी के पास भेज दिया जावे। महाराजाजी का सेवक बोड़ा उस समय लेकर आगरे पहुँचा जिस समय अमरसिंहजी राठौर अर्जुन गौड़ द्वारा फाटक पर मारे जा चुके थे और अमरसिंहजी की स्त्री हाड़ीजी ने सती होने के लिए अमरसिंहजी का मस्तक ला देने को कइयो से कहा था। तब बलूजी ने ही पिछला वैर-भाव भूलकर हाड़ीजी को अमरसिंहजी का मस्तक ला देने की प्रतिज्ञा की थी। उस समय महाराजाजी का भेजा हुआ घोड़ा आ गया था। वे उसी पर सवार होकर इस युद्ध में गए थे और मस्तक हाड़ीजी को भेज दिया था। और महाराजाजी को यह सन्देश भेजा था कि इस घोड़े का बदला मैं आपके काम आकर अवश्य दूँगा। बलूजी का घोड़े सहित इसी युद्ध में निधन हो गया था। किसी कवि ने उस समय का एक दोहा इस प्रकार कहा है

“बलू कहै गोपालरो, सतिर्या हाथ सँदेश ।

पनसाही गड़ सोड़कर, आवाँ छा अमरोश ॥”

इसके पश्चात् कहते हैं कि उहवारी के युद्ध के शवभर पर जिस समय राजाजी की सेना हार चुकी थी और भागन लग गई थी, उस समय

भल्लूजी वसी घोड़े पर, जिसे राणाजी ने आगरे भेजा था, बैठकर इस युद्ध में भाए और बादशाही सेना को हराकर श्रंतर्धान हो गए। उक्त गीत में इसी बात का उल्लेख किया गया है।

१६ गीत [ गोपालजी मेडतिया को ]

भृत अछडां करण माझिया मारण, कटकाँ अटक केवियाँ काल ।  
 भागा तूझ त्यों भयकारौ, गोपाला न करै गोपाल ॥ १ ॥  
 सुरताँखौत लियण न्ह सबली, सबलीं पलाँ उतारण सीस ।  
 मुडवा तूझत्यों मेडतिया, दुवयण न काहाड़ै जगदीस ॥२॥  
 यूँ लड़ताँ झड़ताँ आवाहे, सिरदारौ ऊपर समसेर ।  
 भरण दीय गजगाह मँडाणै, मुडियो न्ह सुणियो गिरमेर ॥ ३ ॥  
 जैमलहरा जाँयता जिसडौ, साच प्रचौ पूरियो सही ।  
 बढ पड़ियो कागदौ बचाँखौ, नीसरियो बाँचियो नहौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ माझिया = मुख्य मनुष्य । केवियाँ = शत्रुओं का ।  
 भयकारौ = भयकार । पलाँ = शत्रु । दुवयण = खोटे वचन । गजगाह  
 = युद्ध । प्रचौ = परिचय ।

इति गीत



## अथ रस अलंकार

गीत

कांनां नै सवद न भावै श्रुत कडु,  
सवदन सुधगत संसकिरत ।  
अप्रयुक्त सुध सदन आध्यौ,  
अरथ कहण असमरथ अत ॥ १ ॥  
निहतारथ लै अरथ प्रगट नहिं,  
अनुचित अरथ न अरथ अजोग ।  
पूरण रण निररथक ठहै पद,  
लै अस्लील समझ विध लोंग ॥ २ ॥  
ईछते अरथ न कहै अवाचक,  
सो संदम्ब रहै संदेह ।  
अप्रतीत निज धान ऊधडै,  
आम्य गवार वचन मति प्रेह ॥ ३ ॥  
रुढ़े प्रयोजन सक्ति विना रच,  
लछ अरथनै चारथ लेख ।  
कत विरुद्ध मति विरुद्ध मति कत,  
आरोपक आरोप असेख ॥ ४ ॥  
करता क्रिया जाण औ करतब,  
विध एही उद्देश विधेय ।

विध उलटी अविमृश्य विधेयंस,  
अरथ कष्ट सौ कष्ट अधेय ॥ ५ ॥  
वाक्य दोष प्रतिकूल वरण वद,  
प्रगट वरण जिण रस प्रतकूल ।  
सुध लक्षण मति अरुच हुऐ सुय,  
मति विरुध रस व्रतहत मूल ॥ ६ ॥  
नून चाहजै सो पद सो नहि  
पद निकमौहै अधिक पद ।  
पद इक द्वै वरियांसु कथित पद,  
हव सुय पतत प्रकर्ष हद ॥ ७ ॥  
रनिवहै आरंभी रचना नहिं,  
वल समास पुनरात विचार ।  
संपूरण कर फेर सराहै,  
अरधांतरैकवचक उचार ॥ ८ ॥  
दल दूजारी पद दल दूजै,  
जाण अबै , अभवन मत जोग ।  
कवि वाछत पद वाच्यन करही  
पद अनभीहित वाच्य प्रयोग ॥ ९ ॥  
कहिणा जोग अरथ पण नहि कह,  
अस्थानस्थन पद निज ओक ।  
वाक्य और पद और वाक्य विच,  
लेखै संकारण कवि लोक ॥ १० ॥

वाक्य और ०हँ और वाक्य विच,  
गर्भित दोषतयो आ गाथ ।  
हांते मवद प्रसिद्ध प्रसिद्धहंत,  
कठै निभै भगनुपक्रम काथ ॥ ११ ॥  
अक्रम क्रम नहि हुऐ औलखौ,  
प्रस्तुत रस कौ और प्रकास ।  
वरणीजै रस हूऐ विरोधो,  
अमर दारारथ सुरथ अवकास ॥ १२ ॥  
प्रस्तुत अरथ नयोथै पेखौ,  
। अरथ अपुष्ट क्रष्ट है आंन ।  
व्याहत जेण निगदर वरणै,  
औही जठै हूऐ उपमांन ॥ १३ ॥  
उभैवार पुनरुक्त अरथ इक,  
दुक्रम आछौ क्रम नहिं दाय ।  
प्राभ्य गिवारु' अरथ कहै गिण,  
ससंदेह संदग्ध सुणाय ॥ १४ ॥  
कहि निरहेत कहै नहि कारण,  
विरुध प्रसिद्ध विद्य विरुद्ध ।  
एक अरथ रचना अनविकत,  
अनियम नियम विषै मति उद्ध ॥ १५ ॥  
अनियम जठै नियम जो आणै,  
और विशेष विषै अविसेष ।

ठह विसेष अविसेष ठिकाणै,  
अपद मुक्त पारष अवरेष ॥ १६ ॥  
पूरण करण ठौड नदिं पूरण,  
पूरण करै और थल पाय ।  
भग्य अशलीलजसहचर भिन्नह,  
बुरा भलारौ संग वताय ॥ १७ ॥  
पेखौ हियै विरुद्ध प्रकासित,  
अरथ न भासै क्रम सौ आण ।  
विधि अजुक्त सो दोष विचारै,  
वल अनुवाद अजुक्त वषाण । १८ ॥  
प्रस्तुत अरथ विसेसण पेखौ,  
मति अनुसार विरोधमई ।  
त्यक्त पुनः स्वीकृत वरणण तज,  
कवि वल वरणै उक्ते कई ॥ १९ ॥  
रस विभचारी थाईरुचरुं,  
वाच्य करै अनुभाव विभाव ।  
स्रम सौ पावै विभावांसिज,  
रै प्रतकूल हूवै कविगव ॥ २० ॥  
पुनः पुनरदीपति पारखियै,  
विन औसर विसतार वणै ।  
औसर विना विछेद ऊधडै,  
भूर अंग विसतार भणै ॥ २१ ॥

जो रस अंगी भूलेजावै,  
रच वरणत अंग रस ।  
प्रकृत विपजिय जठै पायजै,  
प्रकृत रसाल वन परस ॥ २२ ॥  
प्रगट विरुधत कियही पदरी चाहरहै,  
किल दोष नामसांकांनदियौ ;  
अरथ दोस वाली कर हित,  
पूरण बंक्र कियौ ॥ २३ ॥  
अव निरणय सामल अरथ,  
दि०य अदि०य प्रकृत दि०यादिव ।  
जेण विषै प्रभेद जताव धीरोदातधीरललिताहिघन,  
धीरसांत धीरोध्रतघाव ॥ २४ ॥  
इत्यादिक विपरीत उचारै,  
पूरण औरस दोष प्रबंध ।  
रंचकर वैफल्य दोष रच,  
अनुप्रासमै अरथ अपुष्ट ॥  
वृत्त विरुद्ध प्रतिकूल वरण वद,  
जभतीनपही संजुष्ट ॥ २५ ॥  
अप्रयुक्ति दोषण आखीजै,  
असाद्रस्य उपमान असंभ ।  
जाति प्रमाण विषै उपमाजय,  
न्यूनत अधिक अजोगनिदंभ ॥ २६ ॥

समर दुसह चंडाल सरीखौ,  
जीवै करट मारकंड जेम ।  
सूरज अग्नि कणूँका सरीखौ,  
नभ पाताल जिसौ इय नेम ॥ २७ ॥  
निरख साधरम विषै न्यूनता,  
जिको हीणपद दोष जरूर ।  
प्रगटै अधिकपणौस अधिक, पद,  
पेख लच्छ हव मेघा पूर ॥ २८ ॥  
मूंजी लाँछत कस्नाजनमिल,  
राजै बंका कहै सुनिराज ।  
धारनील जीमूत भागधन,  
सोमै जेम ग्रही सिरताज ॥ २९ ॥  
पीत वसनधर धनुषधार पढ,  
मनहर भीम वणै मुर मार ।  
जुत चपला सुर धनुष चंद्रजुत,  
सोमै नील जलद जिम सार ॥ ३० ॥  
भिंग वचन कर काल विधीलख,  
दोष भेद उपमा दरसाय ।  
वारि सुधा इव अहि इव वैष्णी,  
कीरति चाँदणियां समकाय ॥ ३१ ॥  
सुख राधानूं दियौ नंद सुत,  
सुखदै ज्यौं पदमणिनूं सूर ।

प्रीत वहीतो विप्लवदांबुज,  
 भागीरथी जेम गुण मूर ॥ ३२ ॥  
 भग्नप्रकम दूषण भापीजै,  
 उत्प्रेछामै दोष अवाच ।  
 औ नृपछिते पालंत जथा अव,  
 मूरतवंत धरम सुषमाच ॥ ३३ ॥  
 अरथांतर न्यासेज अतात्वक,  
 उत्प्रेछत जो अरथ अमान ।  
 समरथ करै जठै व्है सांप्रत,  
 दूषण अनुचित अरथ निदान ॥ ३४ ॥  
 कटितो देख लाजरु कैहर,  
 भोजाणै छिपियौ वनमांहि ।  
 अधिक गुणी आगै अलवेली,  
 न्यूनगुणी पग माडै नांहि ॥ ३५ ॥  
 समासोक्ति अप्रस्तुती प्रसंसा,  
 जुडै दोष पुनरुक्ति जठै ।  
 तुल्य विसेसण वससूंतवजै,  
 अति निरणय मति हूंत अठै ॥ ३६ ॥  
 कलावान संजुक्त कोमदी,  
 निसा वहाई प्राते नील ।  
 उतपल मुद्रत व्है मांनूं अत्र,  
 सुजनिद्रत व्है तिय इव सील ॥ ३७ ॥

( जोधपुर की पुस्तक न० २ से संगृहीत )

## ( कविराजा बाँकीदासकृत वृत्तरत्नाकर )

( खंडित अलंकार )

पदांरा विभागसौ पदारौ नृत्यत पणौ ॥ ओजं मिलत  
सैधल्यरूपप्रसाद ओजमें एता अंतरभूत हूऐ छै । जरै भटत  
अर्थ प्रतीतरौ हेतुपणौ सो अर्थ व्यक्ति प्रसादमें अंतरभूत  
हूऐछै ॥ प्रथकत्वपदपणौ है रूप जिणरौ सो माधुर्ज सोप्राज्य  
कीनौहैही । अकठन पणौ रूपहै जिणरौ सो सुकुमारता ॥  
उज्वल पणौ है रूप जिणरौ सो कांति । ऐअकष्टता अत्रा-  
न्यता यारी दुष्टतारै त्यागसौं ग्रहण किया ॥ जठै परस्पर  
जुदारी सहोवित्त विषै विषमपणौ इष्ट छै जठै मारगरो अभेद है  
आत्मा जिणरौ सो समता ॥ सो दोस है ॥ भेदपणौ गुण  
है ॥ वीररस वाच्यरै विषै परुष वर्ण । अंगाररै विषै  
मिष्ट सचिककण वर्ण ॥ यूं रस सन्दारा गुण नहीं ।  
स्लोसादिक च्यारौं रै ओजपणौ है क्यूं । गाढबधपणा करनै  
चित्तरी विस्तार रूप दीपति ॥ जिणरा जनकपणासौं ॥ हत-  
वृत्त नहीं प्रापत है गौरवपणौ ऐसौ अंतलधुपणौ ॥ रसरै  
प्रतिकूलपणौ लच्छणरै अनुसरण विषैपण अस्वव्यपणौ । पूर-  
बदल उत्तरदल अंतलधुगुरु वाह ऐ दूजै तीजै पदांतनहू ऐ  
रस अनुकूलही वृत्त आछी वृत्त नावै ॥ असमास विभक्ति-



वाच्य हूए । यथा पदारै एकत्व पर्णा करै सो समास ॥  
जथा ॥ साकवल्लभ है जिखनै सो राजा साक वल्लभ राजा  
औ समास ॥ साक राजा मध्यम समास ॥

दोहा

गोपमिरा गोपाल है, मोदकंद प्रजवंद ॥

आप नित भूपाल है, नंद नंद वृजचंद ॥ १ ॥

अनुप्रास अस्वगत त्रिपदी कपाटबंध गोभूत्रिका ऐसै  
और ही चित्र है सो । अनुप्रास चित्रकौ सदेदसंकर है ॥

अथ अलंकार लिख्यते

अलंकारां विधै जथा जोम दोष सभवै सो पूर्वोक्ति दोषमें  
मिलैहै जिखसौ पृथक्त्व न कहिसां । अनुप्रासरा दोष प्रसिद्ध  
भाव वैफल्य वृत्त विरुद्ध सो अप्रसिद्ध अपरपुष्टार्थ प्रतिकूलवर्ण  
यानूं लावै नहो ॥

क्रमेण उदाहरण

चकरी पंक्ति चक्रो प्रसन्न है स्तुति करै हरि हय हरिश्च  
धूर्जटी धूर्जजाता अक्ष नक्षत्र नाथो अरुण वरुण कूवराभ्रं  
कुवेर रंघ संघ सुराणां इसा रथ वालौ रवि त्वं रत्नक ०है ॥  
अत्र कर्ता चक्रयादिक स्तुति क्रियारथ अंग कर्म ॥ सो औ  
प्रसंग सूरजरी स्तुतिरा व्यास वाक्यादिकां विधै नहो यातै  
प्रसिद्ध भावदोष ॥ अनगुरण नू मयिमेषल मविरतस्यंजान  
मंजु मंजीरं परिसरण मरुचरणे रण रण कम कारणं कुरुते ॥  
पुनः ॥ भण वरुण रमण मंदर मानंद संदि सुंदरेंद्रमुषो

सल्लोलोलापनी इत्यादिक पद विचारियां रंचेक चारुपणौ  
 दरसै सो अपर पुष्टार्थ ॥ वृत्ताविरुद्ध वर्ण्य प्रतिकूल पूरव कद्यौ  
 फंठोत्कंठा । त्रिपाद गतत्वे जभक करै सो अप्रयुक्त दोष ॥  
 उपमा दोष ॥ उपमान असादृश्य उपमान असभव ॥ जाति-  
 प्रमाणगत न्यून अधिकपणौ सो अनुचितार्थ दोष ॥

क्रमेण उदाहरण

तो मुपतै वाक्य निकसै इंदुतै मधु विरै ज्यूं मधुविरवौ  
 चंद्रमै संभवै नहीं कमल विना ॥ कामदेव चंडाल सौ दास्य ॥  
 जातिन्यून उपमान ॥ पद्मासणे चक्रवाक विराजै विधि  
 प्रजा रचण ईछतौ थकौ कमल विपै राजै ज्यूं ॥ पुनः करट  
 धणौ जीवै मारकंड ज्यूं ॥ अत्र उपमान जाति अधिक अनु-  
 चितार्थ दोष ॥ आकृति ग्रहण जाति ॥ उपमान प्रमाणे  
 प्रापत न्यूनता अधिकता ॥ सूरज वन्हीरा कण जिसौ चद्र  
 सुधाविंदुसौ ॥ अत्र न्यूनता सो अनुचितार्थ दोष ॥ नाभ  
 पाताल जिसौ ॥ कुचगिर जिसा ॥ वेणी जमुना जिसी ॥  
 अत्र अधिकता सो अनुचितार्थ ॥ साधर्मप्रापत न्यूनता सो  
 हीनपद ॥ आधिकतासो अधिक पद दोष ॥

क्रमेण उदाहरण

मूंजी लांछत कृष्णाजिन सहित मुनि यूं राजै ॥ नील-  
 जीमूतरौभाग धारियां सूरज सोभै ज्यूं ॥ अत्र मूंजी स्थानीय  
 धर्म तडित् लच्छन तिको न कद्यौ सो हीनपद ॥ पीत वस्त्र  
 धारीयां धनुष धारिया कृत्न मनोज्ञ भीम सोभता हूआ सित-

रदा इंद्र धनु चंद्र सहित नील वलाहक सोमै ज्युं अत्र चंद्र-  
 धिक सो अधिक पद प्रथम विपै संप न कलौ चामकराभवसन  
 सिपड चूड सहित कृष्णलसै पिण्ण रुची इंद्र धनु वलाका जुव  
 नीलधन सोमै ज्युं वग अधिक सो अधिक पद दोष पूर्व  
 मोती कक्षा चाहियै ॥ राधासौं आलिंगत तार हार दुत  
 सहित कृष्ण सोमै वीजकर अलंकृत मेघराजै ज्युं अत्र वलाक  
 कहे नहो यातै हीन पद ॥ अब लिंगकर कुचनकर काल-  
 कर पुरपकर दोष भेद कहै छै ॥ वारि सुधा इव मधुर ॥ सुधा  
 स्त्रीवाची उचित नहो ॥ अमृत कह्यौ चाहियै नपुंसकवाची  
 वारि सम ॥ तव कीर्ति चाँदनीयांसी ॥ अत्र चाँदनी कही चाहियै ॥  
 कृष्णराधाकौं सुषदेताहू अपञ्जनी नृं सूर्ज दिवै ज्युं उप-  
 मेय विपै भूतउपमान विपै भवनकाल ॥ विधीकर ॥ कृष्ण  
 चरणां त्वं प्रीतप्रकहौ गंगाइव ॥ तौ गंगा वहाँ यूं वणै नहो  
 गंगातौ वहै है ॥ कर्तव्यार्थ उपदेसो विधी । औ भग्न  
 प्रक्रम दोषहै ॥ उत्प्रेच्छा विपै अवाचक दोष आवै ॥  
 औछित पालछित पालै जथा भूस्तवान् धर्म है ॥ अत्र जथा  
 साधर्मकी प्रतीत करै यातै उप्सा कौ वाचकहै मनुद्रुति संका  
 इत्यादिक कहिया ॥ अर्थीतरन्धास विपै अतात्वक उत्प्रेछत  
 अर्थ समर्थ करै जत्र अनुचितार्थ दोष ॥ हे तन्वी तव कटि  
 देष त्रीडा सौ केहरी भनूं वन में छिपांगौ अधिक गुणा आगै  
 न्यूनगुणी कद ठहरै ॥ अत्र अनुचितार्थ ॥ समासोक्ति  
 अप्रस्तुत प्रसंसा विपै पुनरुक्ति दोष आवै तुल्य विसेसण-

( १५७ )

वसधी ॥ कोमदी कलावान् सहित रात्रि विहाई प्राते  
नीलोत्पल मुद्रित ०हे मानूँ निद्रत व्हेहै वधू इव ॥ अत्र  
वधू पुनरुक्ति ॥ इति ॥

अथ कविराज वाँकीदासजी कृत वृत्त-रत्नाकर

( खंडित )

संग्य ( प्रबंध )

जुकूसम ॥ अजुकू विसम ॥ छंदवृत्त ॥ समवृत्ति ।  
१ । विसमवृत्ति । २ । अर्ध समवृत्ति । ३ । च्यारपद  
समर ॥ च्यारूँ जुदा विसम ॥ वृत्ति दोहादिक अर्धसम ।  
३ । छार्ईस ताई छंद परै डंडक ॥ तापरै गाथा ॥ एका-  
चर उक्ता । १ । दोयात्तर अत्युक्ता । २ । मध्या । ३ ।  
प्रतिष्ठा । ४ । सुप्रतिष्ठा । ५ । गायत्री । ६ । उष्णिकू ।  
७ । अनुष्णिकू । ८ । बृहती । ९ । पंक्तो । १० । त्रिष्णुपू ।  
११ । जगती । १२ । अति जगती । १३ । सक्करी ।  
१४ । अति सक्करी । १५ । अष्टी । १६ । अति अष्टी ।  
१७ । धृति । १८ । अति धृति । १९ । कृति । २० ।  
प्रकृति । २१ । आकृति । २२ । विकृति । २३ । संकृति ।  
२४ । अभिकृति । २५ । उत्कृति । २६ ।

मात्राछंद ॥ सामान्य नाम

आज्या लच्छन ॥ सात चौकल १ गुरु इता दलमै ॥  
चौकलमै विसम मै जगन आवै ॥ छठा गनमै जगण ॥ ४

लघुकै ॥ प्रथम दलयूं ॥ उत्तर दत्ते जगन धर लघु ॥ वारे  
 १८ प्रथम उत्तर १२, १५ जति ॥ सो पथ्या ॥ १२ लांघै  
 जति विपुला । २ । ४ ज । दहूदले चपला ॥ मुख्य चपला ।  
 पूर्वमें न उत्तर में २४ । ज । जवन चपला ॥ इति आर्ज्या  
 प्रकर्ण गीती ॥ पत्थ्याका दल दोउ ॥ उत्तर सम उपगीती ।  
 प्रथम २७ दुतिय ३० उद्गीतो ॥ पूर्वदले वधतौ गुरज्यूं उत्तर  
 आर्ज्या गीती ॥ अथ वैतालीय प्रकर्ण ॥ १४ मात्रा ० है ।  
 पहिला पदमें छकलधरं अग्र रगन लघु गुरु ॥ २ मै ८ मात्रा  
 धर रगन लघु ॥ सम मात्रा औरसू न मिलै विसमतौ मिलै ॥  
 विसममें छै मात्रा आगै रगन यगन मेलणौ ॥ सममें ८ आगै  
 रगण यगण मेलणौ उपछंदक सो विसमपदे छ मात्रा आगै  
 भगण दोय गुरु सम पदमें ८ मात्रा अग्र भग ८ नै दोय गुरु ॥  
 सो आपा तलिका ॥ छमात्रा आगै रगण लघु गुरु ।  
 सममें आठ आगै रगण लघु गुरु ॥ पिण दूजी तीजी मात्रा  
 भेली कहियी ॥ ४ पदांमें सो दाक्षणांतिका ॥ दूजौ लघु  
 तीजासौ मिलै विसमपदमें ॥ सो उदीच्य व्रत्ति ॥ पांचसौं  
 चोथौ लघु मिलै सो प्राच्यव्रत्ति ॥ विसमपद उदीच्य  
 वृत्तिका ॥ सम पद प्राच्यवृत्तिका सो प्रवृत्तके ॥ प्रवृत्तक का  
 पूर्व दल जिसा दोई दल सो परांतिका ॥ प्रवृत्तक का उत्तर  
 दल जिसा दोई दल सो चारुहास्यनी ॥ इति वैतालीय प्रक-  
 र्णम् ॥ अनुष्टुप् करकै उत्पन्न सो वक्तू छंद लिखोजै ॥  
 च्याहं पदमें नगण सगण आदिनावै ॥ च्याहं अक्षर गुरु

धरणाकै ५ मौ कै छठौ लघु धरणौ अंत गुरु सो वक्तू ॥ सम  
 पदमें ७ मौ लघु सो जुगम विपुला ॥ च्यारू पदामें १६  
 लघु सो अचल धृति ॥ नवमौ लघु अंते गुरु सोलै सो मात्रा-  
 समक ॥ दो गुरु ५ लघु सोभिश्लोक ॥ आठ मात्रा आगै  
 ६ मौ लघु सौ बानवासिका ॥ आठ मात्रा आगै भगण दो  
 गुरु सो उपचित्रा ॥ ५ मौ ८ मौ ६ मौ लघु सो चित्रा ॥  
 ६ मौ गुरु सो अपचित्रा ॥ मात्रा समकादिकरा पद व्है सो  
 पादाकुलक ॥ तीस मात्रा कर अंते गुरु सो सिषा ॥ तीस  
 लघु १ गुरु सोपजापैलादलमें १६ गुरु ॥ दूजा दलमें ३२  
 लघु ॥ सो अनगक्रांडा ॥ २८ लघुमें अंते गुरु सो अति  
 रुचरा ॥ सिषाकै पद विपै श्यरै दल विपै ॥ इतिमात्रा  
 प्रकर्ण ॥ अथ वर्ण प्रकर्ण ॥ १ गुरु श्रीछंद ॥ २ गुरुकौ  
 स्त्रीछंद ॥ भगनकौ नारी ॥ रगनकौ भृगी ॥ भगन गुरु  
 कन्या ॥ १ भगण दोयगुरु सो पंक्ति ॥ तगन यगण तनु-  
 भष्या ॥ नगण यगण ससिवदना ॥ तगण सगन वसुमति ॥  
 रनगन १ गुरु मधु ॥ जगण सगण १ गुरु कुमारललिता ॥  
 तगन भगण गुरु चूडामणी भगन सगन गुरु मदलेखा ॥ सगन  
 रगण गुरु हंसमाला ॥ रभगण २ गुरु चित्रपदा ॥ रभगण  
 २ गुरु विद्युन्माला ॥ भगण तगण लघु गुरु साणवक भगण  
 नगण २ गुरुहंस ॥ रगणजगण गुरुलघु समानका ॥ जगन  
 रगण लघुगुरु प्रमाणका ॥ तगण रगण लघु गुरु नाराचक ॥  
 जगण तगण २ गुरु वितान ॥ १ रगण नगण सगण सोहल-

सुखी ॥ रत्नगण १ भगण भुजग ससुभृता ॥ मगण सगण  
 जगण गुरु ॥ सो सुध्रविराट ॥ मगण नगण तगण गुरु  
 सो पणव ॥ रगण जगण रगण गुरु सो मयूर सारणी ॥  
 भगण मगण सगण गुरु सो रुक्मवती ॥ भगण मगण सगण  
 गुरु सो चंपकमाला ॥ भगण भगण सगण गुरु सो मत्ता ॥  
 नगण रगण जगण गुरु सो मनोरमा ॥ १ तगण २ जगण २  
 गुरु सो उपस्थित ॥ २ तगण १ जगण २ गुरु सो इंद्रवज्रा ॥  
 जगण तगण जगण २ गुरु सो उपेंद्रवज्रा ॥ इंद्रवज्रा उपेंद्र-  
 वज्राका पद मिलै ११ आक्षरौञ्चौरही पद आवै सो उपजाती ॥  
 नगण १ । २ जगण लघु गुरु सो सुमुखी ॥ ३ भगण २ गुरु  
 सो दीधक ॥ मगण १ । २ तगण २ गुरु । च्यार भाव  
 विषै जाति सो सोसालनी ॥ भगण मगण तगण २ गुरु ॥  
 सो वातोर्मा ॥ भगण तगण नगण २ गुरुसो श्री ॥ पांच  
 छ विषै जति ॥ मगण भगण नगण लघु गुरु सो भृमर  
 विलसता ॥ रगण नगण रगण लघु गुरु सो रथोध्रता ॥  
 रगण नगण भगण दीध गुरु सो स्वागता ॥ २ नगण सगण  
 २ गुरु सो वृत्ता ॥ रत्नगण रगण लघु गुरु सो भद्रिका ॥  
 रगण जगण रगण लघु गुरु सो सेनका ॥ जगण सगण तगण  
 २ गुरु सो उपस्थित ॥ इन्ं कोई सिषंडित कहै ॥ भगण  
 तगण नगण दो गुरु सो भौक्तिकमाला ॥ रगण नगण भगण  
 सगण सो चंद्रवर्मा ॥ जगण तगण जगण रगण वंसस्थ ॥  
 रत्नगण जगण रगण सो इंद्रवंसा ॥ ४ ज भोतीदाम ॥ ४ स तो-

टक ॥ न ॥ स्न १ रगाय ॥ सोढुम विलंबत ॥ मभजयगाय सो  
 द्रुतपद ॥ २ नमयगाय ॥ ८, ४ विषै विश्राम सो पुट ॥ रन २  
 रगाय सो प्रमुदित वदना ॥ नयनयसो कुसमविचित्रा जस जस  
 सो जलोद्धतिगति ॥ य ४ भुजंगप्रयात ॥ २ ४ सो स्रगवेणी ॥  
 नभजरगाय सो प्रियंवदा ॥ तय तय सो पुस्पविचित्रा ॥ तय  
 तय द्वै ६ विषै जति सो भणिमाला ॥ तभजरगाय सो ललिता ।  
 सज । रस गाय ॥ प्रमताद्धता ॥ ननभरतोत्थ मिहतो-  
 ज्वला ॥ ममयय सात पांचविषै जति सो वैस्वदैवा ॥ मभ-  
 सम सो जलधरमाला ॥ नज मय सो नवमालनी ॥ २ न  
 २ रगाय सात पाँच विषै जति सो प्रभा ॥ जर जर सो पंच-  
 चामर ॥ मजजर सो मालती ॥ न १, २ जय ॥ सो  
 ताभरस ॥ सातपांच विषै जति । २ न २ त १ गुरु सो  
 क्षमा ॥ मनजय १ गुरु । तीन दस विषै जति सो  
 प्रहर्षणी । जभ सज गुरु । ४, ६ विषै जति सो रुचिरा ।  
 मतयस गुरु सो मत्तमयूर ४, ६ विषै जति ॥ जसतस गुरु  
 सो उपस्थित ॥ जतसज गुरु सो संधिवर्षणी ॥ नजसज  
 गुरु सो मंजुभाषिणी ॥ सज ॥ २ सगाय १ गुरु सो  
 नंदनी ॥ २ नतर गुरु सो चंद्रिका ॥ छ सात विषै जति ॥  
 मतनस । २ गुरु सो सवधा ॥ ५, ६ विषै जति ॥ ननर-  
 सलधुगुरु सात २ विषै जति सो अपराजिता ॥ ननभनलधुगुरु  
 सो प्रहर साकलिका ॥ तभजज । २ गुरु सो वसंततिलका ॥  
 कास्थप मुनिसिंधोघ्नता ॥ सैतववदवर्षिणी ॥ गोम मधुमाधवी ॥



चेतोहर रामकीर्ती ॥ भजसन ॥ २ गुरु सो इंदुवदना ॥  
 मसमभ ॥ २ गुरुसो लोला ॥ सात २ विपै जति ॥ मभनत ।  
 २ गुरु सो हंससेना ॥ ४, १० विपै जति ॥ १, ४ लघु १  
 गुरु सो ससिकला ॥ औही लगहै छ नव विपै जति हूआ ॥  
 औही मखिगणनिकराहै ८, ७ विपै जति हूआ । ५ मसो काम-  
 क्रीडा ॥ ननमयय सो मालिनी ॥ ८, ७ विपै जति ॥ नजभजर  
 सो प्रभद्रक ॥ सजननय ॥ पांच दस विपै जति । सोयेला-  
 मरमयय सात ८ विपै जति सो चंद्रलेखा ॥ भरननन गुरु सो  
 ऋषभ गजविलसत ॥ ७, ६ विपै जति ॥ नजभजरगुरु सो  
 वांछायी ॥ यमनसमलघुगुरु । छ ११ विपै जति सो सिष-  
 रयी ॥ जसजसयलघु ८, ६ विपै जति सो पृथ्वी ॥ भरन  
 भन लघु गुरु १०७ विपै जति सो वंसपत्र ॥ नसमरस लघु  
 गुरु ६, ४, ७ विपै जति सो हरयी ॥ मभनतत । २ गुरु  
 सो मंदाक्राता ४, ६, ७ विपै जति ॥ नज भजज लघु गुरु  
 सो नकुटक ॥ ७, ६, ४ विपै जति हूआं औकौकिलक ॥  
 मवनययय ५, ६ विपै जति सो कुसमितलता ॥ ननयययय  
 १०, ८ विपै वृत्ति सो लताछंद्र ॥ यमन सरर गुरु सो मेव  
 विस्फुर्जत ॥ ममजससतत गुरु सो सार्दूलविक्रीडत ॥  
 रभज ततत गुरु सो वल्लकी ॥ १०, ६ विपै यति ॥ मरभन-  
 यन लघु गुरु सो सुवदना ॥ रज रज रज अंते गुरु लघु सो  
 वृत्त ॥ मरभन ययय सो स्रग्धरा ७, ७, ७ विपै यति ॥ मभभ-  
 यन रन गुरु सो भद्रक १०, १२ विपै यति ॥ सजतनसरर

गुरु मेहास्रग्धरा ॥ ७,७,७ विषै जति ॥ नज भज भजभ  
 लघु सो अस्वललित ॥ समतनननन लघु सो मत्ताक्रोड ॥  
 ८,५,१० विषै जति ॥ भतनसभभनय सो तन्वी ॥ भमसभ-  
 नननन गुरु सो क्रौंचपदा ॥ ५,५,८,७ विषै यति ॥ मम-  
 तनरन नरस लघु सो भुजंगविभ्रमत ॥ मननननननस दो  
 गुरु सो अपवहाथ ॥ ८,६,६,५ विषै यति ॥ इति सम-  
 वृत्ति प्रकरणं ॥ मनयययययय सो चंडा पृष्टिप्रयात डंडक ॥  
 नन सात आगै रगन वधीया नाम ॥ १ अरण ॥ २ अरणव ॥ ३  
 व्याल ॥ ४ जीमूत ॥ ५ लीलाकर ॥ ६ उद्दाम ॥ ७ संष इत्यादिक  
 नाम पावै ॥ ननयय ययययय सो प्रचितकसडडक ॥ इति  
 समवृत्ति ॥ अथ अर्धसमवृत्ति ॥ विसमदल मैं ३ सलघु-  
 समदल मैं इभ २ गुरु सो उपचित्र ॥ विसम दल मैं ३ भ २  
 गुरु समदल मैं न जजय सो द्रुतमध्या ॥ विसमदले ३ स २ गु  
 समदले इभरगु सम ॥ सो वेगवती ॥ समदले तजर १  
 गु विसमदले मसज २ गु सो भद्र विराट ॥ विसमदले  
 सजसगु ॥ समदले भरनर गु सो केतुमती ॥ विसमे ततज  
 २ गु ॥ समे जतज २ गु सो आख्यानकी ॥ विसमेजतज  
 २ गु ॥ समे ततज २ गु ॥ सो विपरीत आख्यानकी ॥  
 विसमेससस लघु ॥ समेन भरभर सो हरणी पुलता  
 विसमेननरलघु ॥ समेनजजर सो वक्रं ॥ विसमेननर  
 समेनजजर गु सो पुस्पताप्रा ॥ केइक वैतालीयनै अपर  
 वक्राख्य केइक पुस्पताग्रानै श्रीपछांदसि कहै इति अर्धसम वृत्ति ॥

अथ पदचतुर्ध्वृत्ति ॥ प्रथमपदे ८ । २ । १२ । ३ । १६ । ४ ।  
२० ॥ ३ पद या विध ४ पदांत २ गु । सो षोड ॥ १ पदे ।  
१२ । २ । ८ ॥ ३ । १६ । ४ । २० सो कलिता ॥ १ । १२  
२ ॥ १६ । ३ । ८ । ४ । २० दो गुरुच्यारो पदांते सो लवल्या ॥  
१ । १२ । २ । १६ । ३ । २० । ४ ॥ ८ ॥ सो अमृतधारा ॥  
पदचतुर्ध्वप्रकर्णं संपूर्णम् ॥ आदपदे सजसलधु । २ ॥ नसजगु  
॥ ३ ॥ म नजलधु । ४ ॥ सज सजगु ॥ सो उद्गीव तीन इण  
जिसापद तीजामै रनभगुसो सौरभक ॥ तीन पद उसाहीज ।  
तीजामै नन सससो ललित ॥ इति उद्गाताप्रकर्ण ॥  
प्रथमपदे मसजभरगु ॥ दूजा सनजरगु ॥ तीजामैननस । ४  
मै ॥ नननजय सो उपस्थित प्रचुपित ॥ और पद प्रथम  
जिसा तीजा मै तजर सो आरषभ ॥ इति उपस्थित  
प्रचुपित प्रकर्ण ॥ अथ गाथा ॥ कै विसम अचर ह्वै पद  
मौकै विषम पद ह्वै ॥ सो गाथा ॥ इति श्रीवृत्तिरत्नाकर  
लिखते आसीया वाँकीदास सहर जोधपुर मध्ये ॥

काव्य के गुण-दोष (खंडित) जो कविराजा  
बाँकीदासजो के प्रतीत होते हैं ।

पद्यांसूं ज्युं भेद छै त्यूं गुणारै नै अलंकारारै भेद छै ॥  
अथ गुणभेद ॥ माधुर्ज ओज प्रसाद क्रमकर लच्छण आल्हा-  
दिक पणौ सो माधुर्जसंगार द्रुतिकारण करणा विप्रलंभसांते  
अत्यंत द्रुतिरौ कारणकों कहै दुतिकाई जिणरौ समाधान सामा-  
जिकां सभ्यारै चित्तविषै नव रसांरै समूह सूं प्रगट होण जोग  
तीन अवस्था इति १ विस्तार २ । विकास ३ ॥ किणां रसां सूं  
किसी अवस्था है सिंगार करणा सांतसूं द्रुति वीर विभच्छ  
रद्रसूं विस्तार हास्य अद्भूत भयाणकसूं विकास हास्य विषै  
वंदनीयकौ अद्भूते नेत्र विकासभया एकसूं सीधगवन ॥  
ओजलच्छन चित्तरै विस्तार रूप दीपतिरौजनक ओज वीर-  
विभच्छ रद्र विषै क्रमकर ओजरौ आधिकपणौ प्रसाद लच्छण ॥  
अग्निज्युं सूकौ काष्टप्रतै व्याप्त ०हैछै फेरं निर्मल जल भिसरी  
प्रतै व्यापि जिण तरहसूं चित्तप्रतै जो व्याप्त होय सो प्रसाद ॥  
सर्व रसा विषै सर्व रचनां विषै स्थिति है जद प्रसादगुण वीर-  
रद्रादिकां विषै चित्त प्रतै व्याप्त होय जद सूका काठ विषै

अग्नि ज्युं जद प्रसाद गुण चित्तप्रतै सिंगार करुनादिकारै विपै  
 व्याप्ति होय निर्मल जल सिवाप्रतै ज्युं ॥ स्नेस १ प्रसाद २  
 समता ३ माधुर्ज ४ सुकुमारता ५ अर्थव्यक्ति ६ उदारार्थ ७  
 ओज ८ क्रांति ९ समाधि १० ए दस गुण डंडी मानैछै सो  
 तीनां ही में अंतरभाव हूअै ॥ केइक दोसरा अभावपणै कर  
 अंगीकार कियाछै । केइक दोस रूप छै अठा आगै माधुर्जादिक  
 तीन गुण ज्यांरा व्यंजकवर्ण कहैछै । वरख समास रचना जिकां  
 गुणारो व्यंजक होय कित्ता गुणारा कित्ता विंजक ॥ मखंक  
 विपै आपरै वर्गरे छेहला अचरे करके जुक्त ट ठ ड ढ क र कै  
 रहित इ कसौ लैनैमताई जिके अचर । ह्रस्व सुर नहित रेफनै  
 एकार असमासनै मध्यम समास माधुर्हुवती पदांत जौण विपै  
 रचना अै माधुर्ज गुणारा व्यंजकछै वर्गरे प्रथम नै त्रतिय  
 करनै वर्गरे दूसरै चौथै क्रम कर जोग रेफ करनै जोग होय  
 तूल्य अचरांसै जोग होय ट ठ ड ढ श प इसा वर्ण दीर्घ  
 समास विकट संघटना अै ओजरा व्यंजक छै स्रवण मात्रकरनै  
 सुणिया थका वर्ण समासनै रचनो आ अर्थरी प्रतीत करै सो  
 प्रसाद गुण ॥ संधिरै सुंदरपणै सूं पदारै एक पद पणै करनैहै  
 ज्युं प्रकास सो रलेस ॥ “उन्मज्जलकुजरेंद्रवठलास्फालानु-  
 वंधोधुतः” ॥ इति उदाहरण ॥ आरोहा अवरोहा सरूपहै ।  
 जिणरौ सो समाधि ॥ आरोह सो गाढता अवरोह सो सिथि-  
 लता ॥ चंचल जो भुज त्यांकर भमाई जो चडगदा तिणरौ  
 अभिधात तिणकरनै संचूरणत आरोह चढवौ अवरोह उतरवौ ॥

इति आरोह ॥ उरुदोय सुजोधनरा अठाताई अवरोह ॥ भे सौह  
श्रौरुधर तिणकर रक्त है कांति जिणरो सो थारै फेरनं सोमित  
करैलौ थारै अठाताई आरोह ॥ हे देवी भीमकरैला अठाताई  
अवरोह ॥ विकटबंधपणै है सरीर जिणरौ सो उदारता ॥ .॥\*

\* यह अपूर्ण और खंडित ही प्राप्त हुआ । इस खयाल से इसको इस ग्रंथावली के साथ लगा दिया है कि इसको देखकर डिंगल के विद्वानों के संग्रह में बाकीदास-कृत ये ग्रंथ पूरे मिलेंगे तो फिर कभी वे पूर्णरूप में छापे जा सकते हैं ।



